CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावीराचार्य

(एक समीक्षात्मक अध्ययन)

$$^{n}C_{r}=\frac{n!}{r!\,(n-r)!}$$

INTERNATIONAL SEMINAR ON JAINA MATHEMATICS & COSMOLOGY
APRIL 26-28, 1985 HASTINAPUR

अनुपम जैन
सुरेश चन्द्र अग्रवाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

17.3

A K Jain

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावीराचार्य

(एक समीक्षात्मक अध्ययन)

द्वारा

अनुपम जैन

व्याख्याता, गणित विभाग
शासकीय महाविद्यालय,
ब्यावरा (राजगढ़) 465–474

एवं

सुरेश चन्द्र अग्रवाल

रीडर, गणित विभाग
उच्च शिक्षा संस्थान
मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ

प्रकाशक :

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान,
हस्तिनापुर (मेरठ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार (अप्रैल 26–28)-1985
के अवसर पर
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर
एवं
मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ
हेतु
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ)
द्वारा प्रकाशित

सर्वाधिकार लेखकाधीन

प्रथम संस्करण, 1985, 1100 प्रतियाँ

मूल्य 10·00 रुपये/20·00 रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय वक्तव्य

गणित का जैन धर्म/दर्शन में विशिष्ट स्थान है। भूगोल, खगोल, कर्म सिद्धान्तादि विषयक ग्रंथों में विपुल परिमाण में गणितीय सामग्री उपलब्ध है। इन प्राचीन ज्ञात/अज्ञात ग्रंथों में निहित अज्ञात/उपेक्षित गणितीय ज्ञान को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से संस्थान ने जम्बूद्वीप सेमिनार–82 के अवसर पर यथाशीघ्र जैन गणित पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार के आयोजन का निर्णय किया था। अप्रैल–85 में प्रस्तावित "जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार" इसी का प्रतिफल है। संस्थान ने सेमिनार के अवसर पर महत्वपूर्ण आलेखों की एक शृंखला प्रकाशित करने का भी निर्णय लिया है। प्रस्तुत प्रकाशन इसी शृंखला का एक भाग है। संस्थान इससे पूर्व इस शृंखला में आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती जी द्वारा लिखित जैन भूगोल (हिंदी एवं अंग्रेजी) तथा प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन एवं अनुपम जैन द्वारा आ० यतिवृषभ, आ० वीरसेन तथा आ० नेमिचन्द्र पर लिखित विस्तृत आलेख Philosopher Jaina Mathematicians प्रकाशित कर चुका है।

प्राचीन जैन ग्रंथों में दार्शनिक विषयों के विवेचन की शृंखला में स्वाभाविक रूप में आये विशिष्ट गणितीय ज्ञान को समीचीन रूप में हृदयंगम करने हेतु उसके अध्येताओं/पाठकों को सामान्य गणितीय ज्ञान अपरिहार्य रूप से आवश्यक है। इस आवश्यकता का अनुभव करते हुए कतिपय आचार्यों ने स्वतन्त्र रूप से पूर्णतः गणितीय ग्रंथों का सृजन किया। आ० महावीर (850) का स्थान इस प्रकार के ग्रंथों के रचनाकारों की शृंखला में अद्वितीय है। उनके द्वारा रचित गणितसार-संग्रह पाठ्य पुस्तक की शैली में रचित उस काल तक के लौकिक ज्ञान को समाहित करने वाली अद्वितीय पुस्तक है। प्रस्तुत आलेख में विद्वान लेखकों जैन एवं अग्रवाल ने महावीराचार्य के जीवन, रचनाओं तथा गणितसार-संग्रह में निहित गणितीय सामग्री का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। गणितसार संग्रह की पांडुलिपियों तथा पूर्व में इस ग्रंथ पर लिखे गये लेखों की सूची संकलित कर लेखक ने इसकी उपादेयता में वृद्धि की है।

हम सेमिनार की आयोजन समिति की ओर से लेखकों को इस सहयोग हेतु हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

महामन्त्री,
(रवीन्द्र कुमार जैन)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

All things considered the work of Mahaviracarya (महावीराचार्य) is perhaps the most noteworthy of the Hindu contribution to Mathemactis possibly excepting that of Bhaskara (भास्कर), who lived three centuries later Mahavira (महावीर).

—D. E. Smith.

जैन परम्परा के उपलब्ध गणितीय ग्रंथों में से गणितसार संग्रह अत्यंत प्राचीन है। इस ग्रन्थ के कर्ता महावीराचार्य (अथवा महावीर, 850 ई०) को ज्योतिष के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त पाठ्य-पुस्तक की शैली में रचित सर्वप्रथम भारतीय गणित ग्रंथ लिखने का गौरव भी प्राप्त है। दिगम्बर जैन परम्परा में दीक्षित आचार्य महावीर द्वारा निज परम्परा से प्राप्त ज्ञान की, विशदता, उत्कृष्टता के उल्लेख, परम्परित ज्ञान के कुछ अंश को प्रस्तुत ग्रंथ में संकलित कर पाने की स्पष्ट स्वीकारोक्ति, ग्रंथ की संज्ञा एवं अन्य अनेक अन्तर्बाह्य साक्ष्य इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं,[1] कि यह ग्रंथ जैन परम्परा में विकसित गणित का श्रेष्ठ प्रतिनिधि है। हम आगामी पृष्ठों में इसी ग्रंथ एवं ग्रंथकार का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे।

[1] गणितसार-संग्रह, अध्याय–1, श्लोक 17, 18, 19 पृ० 3

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय वक्तव्य

भूमिका

1. व्यक्तित्व और कृतित्व 1

2. परवर्ती शोधकार्य 6

3. उपलब्ध पांडुलिपियाँ 9

4. गणितसार संग्रह में निहित गणित 10

स्थानमान एवं मापन पद्धतियाँ

अष्ट परिकर्म,

भिन्नों पर परिकर्म,

त्रैराशिक एवं मिश्र समानुपात,

क्रमचय-संचय,

श्रेणी-व्यवहार गणित,

विविध ज्यामितीय आकृतियों के क्षेत्रफल,

वीजगणितीय समीकरणों के हल,

जन्य व्यवहार,

5. संदर्भ ग्रन्थ एवं लेख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभाशीर्वाद

जैन धर्म में गणित का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। आज क्या, सदा से ही लौकिक, वैदिक तथा धार्मिक सभी कार्य गणना विज्ञान के बिना सम्भव नहीं रहे हैं। वैसे करणानुयोग के तो सभी ग्रन्थ गणितमय हैं, लेकिन कुछ जैनाचार्यों ने पूर्णतः गणीतीय ग्रन्थ ही लिखे हैं। 'श्रीमहावीराचार्य' एक ऐसे ही आचार्य हुए हैं, जिन्होंने विद्वानों की सुविधा हेतु 'गणितसार संग्रह' जैसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इसमें कई नये फार्मूले हैं। आज बहुत से विद्वान् इस ग्रन्थ से एवं ग्रन्थकर्ता के नाम से अपरिचित हैं : सर्व विद्वानों को इस ग्रन्थ की गौरवपूर्ण विशेषताओं से परिचित कराने तथा विश्व के सम्मुख श्रीमहावीराचार्य के कृतित्व को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से अनुपम जैन ने इस कृति का सृजन किया है उनको मेरा बहुत-बहुत आशीर्वाद है। वे इसी प्रकार आगम ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन एवं अनुशीलन में लगे रहे हैं इसी में उनके नाम की समलता है।

इसी कृति के प्रणयन में डा० सुरेशचन्द्र अग्रवाल सहयोगी रहे हैं उनको भी मेरा 'धर्मवृद्धिरस्तु' शुभाशीर्वाद।

आर्यिका ज्ञानमती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

महावीराचार्य के जीवन वृत्त के संदर्भ में हमारा ज्ञान अन्य प्राचीन जैन ग्रंथकारों के समान ही अत्यल्प है। गणितसार संग्रह की उत्थानिका में उपलब्ध विवरण[1] से स्पष्ट है कि आप मान्यरवेट (वर्तमान कर्नाटक राज्य एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों का कुछ भाग) के शासक राष्ट्रकूट वंशीय नृपतुंग अमोघवर्ष I (814–877 ई०) के समकालीन थे। गहन साहित्यिक अभिरुचि सम्पन्न, जैन धर्मानुयायी, आदि पुराण एवं पार्श्वाभ्युदय पुराण के रचयिता[2] प्रसिद्ध दि० जैनाचार्य, आ० जिनसेन (धवलाकार आ० वीरसेन के शिष्य) के शिष्य[3] अमोघवर्ष ने जीवन के अन्तिम दिनों में मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली थी।[4] इनके शासन की महावीराचार्य ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।[5] इससे यह भी प्रतीत होता है कि इन्हें राज्य का संरक्षण प्राप्त था।[6] संरक्षण से यहाँ आशय आहार-विहार की चर्या का निर्विघ्न सम्पादित होना है। क्योंकि अपरिग्रह महाव्रत के धारी दिगम्बर मुनियों के लिए अन्य संरक्षण निरर्थक है।

आपकी गुरु-परम्परा, जन्म-स्थान, माता-पिता आदि के संदर्भ में कुछ भी ज्ञात नहीं है, किन्तु दक्षिण भारत में उपलब्ध पांडुलिपियों तथा अमोघवर्ष I के शासन काल में आपकी मान्यरवेट में उपस्थिति से यह स्पष्ट है कि आपका कार्यक्षेत्र कन्नड़ भाषा-भाषी दक्षिण भारत है। गणितसार संग्रह के विविध प्रकरणों के प्रारम्भ में किये गये मंगलाचरणों एवं संदर्भित उदाहरणों से यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित है कि आप दिगम्बर जैनाचार्य थे।[7]

व्यक्तित्व के समान ही कृतित्व के संदर्भ में भी अद्यावधि हम अंधकार में हैं।

---

[1] गणितसार संग्रह, अध्याय-1, श्लोक 3–8, पृष्ठ 1–2

[2] कविराज मार्ग एवं प्रश्नोत्तर रत्नमालिका की रचना का भी श्रेय आपको दिया जाता है

[3] देखें सं० 20, पृ० x

[4] महावीराचार्य द्वारा आपके लिए चक्रिका भंजन, यथाख्यात चरित्र-जलधि शब्दों का प्रयोग एवं प्रश्नोत्तर रत्नमालिका में आपके द्वारा स्वयं के लिए विवेकात्त्यक्तराज्येन के प्रयोग से यह ध्वनित होता है

[5] गणितसार संग्रह, 1/3-8, पृ० 1, 2

[6] देखें, सं० 20, पृ० x

[7] गणितसार संग्रह, 1/1-2, 3/1-2, 4/1-2, 5/1-2, 6/1-2, 7/1-2, 9/1

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभिन्न शोधक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न 5 कृतियों की रचना का श्रेय महावीराचार्य को दिया है। इनकी कृतियों के संदर्भ में मतवैषम्य इतना व्यापक है कि किसी भी विद्वान ने इन पाँचों की रचना का श्रेय आपको नहीं दिया है अपितु प्रत्येक ने अधिकतम चार को आपकी कृति माना है। यहाँ सभी पाँचों कृतियों का उल्लेख कर तद्विषयक मान्यताओं का विश्लेषण प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा।

1. गणितसार संग्रह ।
2. षट्त्रिंशिका (षट्त्रिंशतिका)।
3. ज्योतिष पटल ।
4. क्षेत्र गणित ।
5. छत्तीसपूर्वा उत्तर प्रतिसह (छत्तीस पूर्व प्रति उत्तर प्रतिसह)।

गणितसार संग्रह आपकी सर्वमान्य, बहुश्रुत एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति है। 1912 में एम० रंगाचार्य ने इसका अंग्रेजी अनुवाद विस्तृत टिप्पणियों सहित सर्वप्रथम सम्पादित किया था।[1] 1963 में अंग्रेजी संस्करण के आधार पर लक्ष्मीचन्द्र जैन ने इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तावना, परिशिष्टों एवं पाद टिप्पणियों सहित प्रस्तुत किया।[2] गणितसार संग्रह, ज्योतिष के प्रभाव से मुक्त, पूर्णत: गणितीय, पाठ्य-पुस्तक शैली में लिखी विशिष्ट पुस्तक है जिसका सदियों तक दक्षिण भारत में पाठ्य-पुस्तक के रूप में उपयोग होता रहा।[3] महावीराचार्य द्वारा मूल रूप से संस्कृत भाषा में लिखी इस कृति का पावलूरिमल्ल (11वीं शती ई०) द्वारा तेलुगू में अनुवाद एवं जैन कवि बल्लभ (12वीं शती ई०) द्वारा कन्नड़ में टीका की गई थी।

प्रस्तुत ग्रंथ मूल रूप से 8 अध्यायों में लिखा गया था। किन्तु इसके प्रकाशित संस्करण में प्रथम अध्याय को संज्ञाधिकार एवं परिकर्म व्यवहार शीर्षक दो अध्यायों में विभक्त कर दिया गया है। फलत: आगे सर्वत्र हम 9 अध्यायों के रूप में ही इसकी चर्चा करेंगें। ग्रंथ के विविध अध्यायों के अन्तर्गत स्थानक्रम, मापन पद्धतियों, शून्य, घनात्मक एवं ऋणात्मक संख्याओं सम्बन्धी नियमों, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल आदि परिकर्मों, भिन्नों पर परिकर्मों, भिन्न जातियों, एकांशक भिन्न, समान्तर, गुणोत्तर एवं मिश्र श्रेणियों सम्बन्धी नियमों, क्रमचय-संचय, ब्याज, त्रैराशिक, व्यस्त त्रैराशिक सरल एवं द्विघात समीकरणों, क्षेत्र, खात, चिति, क्रकचिका, छाया आदि व्यवहारों की विस्तृत चर्चा है। आचार्य महावीर ने एक सुगठित पाठ्य-पुस्तक की अपेक्षाओं के अनुरूप उस समय तक उपलब्ध लौकिक गणित सम्बन्धी ज्ञान को अत्यंत व्यवस्थित रूप में इस पुस्तक में समाहित कर दिया है।

---

[1] Madras Govt. Madras, 1912.

[2] जैन संस्कृति, संरक्षक संघ, शोलापुर, 1963।

[3] देखें, सं० 20, पृ० x

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपकी द्वितीय तथाकथित कृति षट्‌त्रिशिका है। इसकी विभिन्न प्रतियों पर षट्‌त्रिशतिका, छत्तीसी टीका आदि शीर्षक भी अंकित हैं। इसका सर्वप्रथम उल्लेख 1957 ई० में कासलीवाल ने किया था। कासलीवाल के उल्लेखानुसार[1] इसकी एक प्रति दिगम्बर जैन मंदिर ठोलियाँन, जयपुर के सरस्वती भंडार में उपलब्ध है।

कासलीवाल द्वारा दी गई सूचना के आधार पर 1964 में अग्रवाल ने इसका महावीराचार्य की कृति के रूप में निम्नवत उल्लेख किया—

"महावीराचार्य ने गणितसार संग्रह के अतिरिक्त ज्योतिष पटल एवं षट्‌त्रिशिका इत्यादि मौलिक एवं अभूतपूर्व ग्रंथों की रचना की जो कि ज्योतिष एवं गणित विषय-वस्तु के कारण महत्वपूर्ण है।"[2]

आपने लिखा है कि—

"इसमें (षट्‌त्रिशिका में) बीजगणित की ही चर्चा है।"[3]

1969 में अंबालाल शाह ने भी कासलीवाल के संदर्भ के आधार पर इसका उल्लेख किया है।[4] किन्तु अग्रवाल ने अपने शोध प्रबन्ध (1972)[5] में इसका उल्लेख नहीं किया।

1974 में राधा चरन गुप्त ने अग्रवाल के लेख (1964) के सारांश[6] के आधार पर इस कृति का महावीराचार्य की कृति के रूप में संक्षिप्त उल्लेख किया।[7] किन्तु नेमिचन्द्र शास्त्री,[8] परमानन्द जैन[9] एवं ज्योति प्रसाद जैन[10] ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया।

ठोलियाँन जैन मन्दिर में उपलब्ध एक प्रति (प्रतिक्रमांक-465) (दूसरी प्रति क्रमांक 461 षट्‌त्रिशिका नहीं है) के अध्ययन से स्पष्ट है कि इसमें निम्न पाँच अध्याय हैं—

1. परिकर्म व्यवहार।
2. कलासवर्ण व्यवहार।

---

[1] देखें, सं० 8, पृ० 148 अथवा सं० 4-II

[2] देखें, सं० 1-I, पृ० 43

[3] वही, पृ० 47

[4] देखें, सं० 12, पृ० 162

[5] देखें, सं० 1-II

[6] Abstract appeared in Digest of Indological Studies, Vol. III, (1964), Part-2, PP. 622-623

[7] देखें, सं० 26-I, पृ० 17

[8] देखें, सं० 10-I

[9] देखें, सं० 7

[10] देखें, सं० 5

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3. प्रकीर्णक व्यवहार।
4. त्रैराशिक व्यवहार।
5. वर्गसंकलितानयन सूत्र घनसंकलितानयन सूत्र।

इन पाँचों में से प्रथम चार तो गणितसार संग्रह के प्रथम पाँच अध्याय हैं। (परिकर्म व्यवहार के अन्तर्गत संज्ञाधिकार एवं परिकर्म व्यवहार शीर्षक 2 अध्याय आ गये हैं) अन्तिम पाँचवाँ अध्याय गणितसार संग्रह से भिन्न है। इसी पंचम अध्याय के प्रारम्भ में आयी निम्न उत्थानिका द्रष्टव्य है।

"श्री वीतरागाय नमः (छः) छत्तीसमेतेन सकल 8, भिन्न जाति 6, प्रकीर्णक 10, त्रैराशिक 4, इंत्ता छत्तीस में बुदुवीराचार्यारू, पेल्हगणितवनु माधवचन्द्र त्रैविद्याचार्यारू शोध सिदरागि शोध्य सारसंग्रह मेनिसिकोत्रुंदु। वर्गसंकलितानयनसूत्र।"[1]

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि इसकी रचना माधवचन्द्र त्रैविद्य (11वीं शती ई०) ने महावीराचार्य के (गणित) सार-संग्रह के आधार पर की है। इन्हीं माधव चन्द्र त्रैविद्य ने त्रिलोकसार की टीका भी लिखी है। वस्तुतः षट्त्रिंशिका का वर्तमान रूप महावीराचार्य द्वारा प्रणीत नहीं है। यह हो सकता है कि महावीराचार्य ने कोई ऐसा ग्रंथ लिखा हो जिसकी विषयवस्तु गणितसार संग्रह के प्रथम पाँच अध्यायों के समान हो एवं उस ग्रंथ को विस्तृत करते हुए पाद-टिप्पणियों के साथ माधव चन्द्र त्रैविद्य ने षट्त्रिंशिका की रचना की हो।[2]

महावीराचार्य की कृति के रूप में 'ज्योतिष पटल' का सर्वप्रथम उल्लेख नेमिचन्द्र शास्त्री ने 1950 में विविध ग्रंथ भंडारों में उपलब्ध गणित एवं ज्योतिष विषयक जैन ग्रंथों की सूची[3] में किया था, किन्तु इस सूची में भंडारों का नाम आदि न दिये होने के कारण यह सूचना विशेष उपयोगी न रही।

अग्रवाल ने अपने लेख में न केवल इसे महावीराचार्य की कृति के रूप में स्वीकार किया अपितु विस्तार से उल्लेख करते हुए लिखा है कि—

"ज्योतिष पटल में ग्रह, नक्षत्र, ताराओं के संस्थान, गति, स्थिति और संख्या आदि का प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि ज्योतिष पटल सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं है तथापि जितना अंश उपलब्ध है उससे ज्ञात होता है कि गणितसार का उपयोग इस ग्रंथ के ग्रह गणित में किया गया है।[4]

किन्तु शास्त्री ने 1974 में अपनी पुस्तक में इस ग्रंथ के अनुपलब्ध होने का

---

[1] षट्त्रिंशिका, जयपुर, पांडुलिपि
[2] देखें, सं० 4-I,
[3] देखें, सं० 10-I, पृ० 482
[4] देखें सं० 1-I, पृ० 47

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उल्लेख किया ।[1] यह विरोधाभास क्यों ? संभवतः यह पुस्तक किसी भंडार में उपलब्ध होगी अन्यथा शास्त्री यह उल्लेख न करते ।[2]

1950 में ही नेमिचन्द्र (जैन) शास्त्री ने महावीराचार्य की एक अन्य कृति, 'छत्तीस पूर्व प्रति उत्तर प्रतिसह' का उल्लेख किया था[3] एवं उनको शास्त्र भंडारों में उपलब्ध होना बताया था किन्तु भंडार का उल्लेख नहीं किया । 1980 में ज्योति प्रसाद जैन ने भी इसे महावीराचार्य की कृति माना[4] किन्तु अग्रवाल, गुप्ता आदि ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया । विभिन्न शास्त्र भंडारों में पायी जाने वाली छत्तीसी टीका, पूर्व छत्तीसी एवं उत्तरछत्तीसी टीकाओं का मूल स्रोत क्या है ? कहीं इनका आधार वर्तमान में अनुपलब्ध ग्रंथ तो नहीं है ?

1980 में ही ज्योति प्रसाद जैन ने 'क्षेत्र गणित' शीर्षक एक अन्य कृति की रचना का श्रेय महावीराचार्य को दिया है ।[5] जबकि अन्य किसी ने इस कृति का उल्लेख नहीं किया है । 466 क्रमांक पर ठोलियॉन जैन मन्दिर, जयपुर में उपलब्ध तथाकथित, 'षट्त्रिंशिका' की द्वितीय प्रति का प्रारम्भ 'अथक्षेत्रगणितं'[6] से हुआ है, एवं सम्पूर्ण कृति में क्षेत्रगणित का ही विषय चर्चित है । गणितसार संग्रह की उपलब्ध अपूर्ण पांडुलिपियों में भी या तो 'षट्त्रिंशिका' की विषयवस्तु अथवा सातवाँ क्षेत्र गणित का अध्याय है । कहीं सातवें अध्याय वाली पांडुलिपियाँ इसी 'क्षेत्र गणित' की टीकायें तो नहीं ? यह प्रश्न विचारणीय है ।

परमानन्द जैन ने 1974 में अपने ग्रंथ में 'ज्योतिर्ज्ञानविधि' एवं 'जातक तिलक' शीर्षक दो अन्य ग्रंथों की रचना का श्रेय भी महावीराचार्य को दिया है ।[6] उनके कथन का आधार संभवतः श्रीधर की कृतियों से हुई भ्रांति ही है ।

---

[1] देखें, सं० 10-II, पृ० 36
[2] देखें, सं० 10-I, पृ० 478
[3] वही, पृ० 478
[4] देखें, सं० 5, पृ० 275
[5] वही पृ० 275
[6] देखें, सं० 7, पृ० 187

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परवर्ती शोध कार्य

महावीराचार्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति गणितसार-संग्रह ने विश्व के गणित इतिहासज्ञों को अपनी ओर व्यापक रूप से आकृष्ट किया है। इस कृति के प्रकाशन (1912) के उपरान्त प्रकाशित गणित इतिहास की प्रायः सभी पुस्तकों में इसका सम्मानपूर्वक उल्लेख है। यहाँ उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत के गणितज्ञों एवं ज्योतिर्विदों का परिचय देने वाली 1899 ई० में प्रकाशित पुस्तक 'गणक तंरगिणी'[1] में इनका उल्लेख मात्र भी नहीं है। Eves[2], Bell[3], Cajori[4], Kline[5], आदि ने अपनी पुस्तकों में इनका संक्षिप्त उल्लेख किया है। Smith[6] दत्त एवं सिंह[7], ब्रजमोहन[8], आयंगर[9], अग्रवाल[10], वाग[11], सरस्वती[12], आदि ने अपनी पुस्तकों में इसके कृतित्व पर विस्तार से चर्चा की है एवं मुक्तकंठ से इनकी प्रशंसा की है।

प्राचीन भारतीय गणित अथवा ज्यामिति विषयक ऐसे सभी लेखों, जिनमें समग्र रूप से गणितज्ञों के कृतित्व अथवा जैन गणित का विवेचन किया गया हो, में महावीराचार्य विषयक न्यूनाधिक सामग्री उपलब्ध है तथापि हम यहाँ कतिपय उन लेखों को सूचीबद्ध कर रहे हैं जो विशेषतः महावीराचार्य पर ही लिखे गये हैं।

---

[1] देखें, सं० 3
[2] देखें, सं० 25
[3] देखें, सं० 21
[4] देखें, सं० 22
[5] देखें, सं० 29
[6] देखें, सं० 32
[7] देखें, सं० 24
[8] देखें, सं० 2
[9] देखें, सं० 33
[10] देखें, सं० 1–I, II
[11] देखें, सं० 19
[12] देखें, सं० 31

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1. Smith, D. E.—1908	'Ganit sara Samgraha of Mahaviracarya' Bibliotheca Mathematica–3, pp. 106–107
2. Smith, D. E.—1912	'Introduction of GSS', English Edition of Ganit asara-Samgraha, Madras.
3. Dutt, B. B.—1928	On Mahavira's Solution of Rational Triangle and Quadrilateral' B. C. M. S.—20, pp. 267–294
4. Bell, E. T.—1936	'Mahavira's Diophontine System,' B. C. M. S., 28, pp. 121–122
5. Bagi, B. B.—1963	'Introductory' Hindi Edition of Ganitasara-Samgraha, Sholapur.
6. Agarwal, M. B. Lal—1964	'महावीराचार्य की जैन गणित को देन'' जैन सिद्धान्त भास्कर, 24–I, पृ० 42–47
7. Srinivasiengar, C. N.—1967	'Mahaviracarya' The History of Ancient Indian Mathematics, Calcutta, pp. 70–78
8. Saraswati, T. A.—1967	'Mahavira's Treatment of Series' Jurnal of Ranchi Univ.. pp. 39–50
9. Volodarski, A. I.—1968	'About Treatise of Mahavira' (A brief course in Mathematics-Russian) Physico-mathematics, Nauki Va strankh vastoka-Vipusk-'II 'Mascow' pp–98–130
10. Gupta, R. C.—1974	'Mahaviracarya on the Perimeter and Area of an Ellipse' M. E.–8-I (Sec.–B), pp. 17–20
11. Gupta, R. C.—1975	'Mahaviracarya Rule for the Surface Area of Spherical Segment-A New Interpretation' Tulsi-Prajna–(तुलसी प्रज्ञा) 2, pp. 69–64

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

12. Jain, B. S.—1977 'On the Ganitasara-Samgraha of Mahavira' I. J. H. S., 12–1, pp. 17–32

13. Saraswati, S. P.—1980 'आचार्य महावीर की रेखा गणितीय उपलब्धियाँ' सिद्धान्ताचार्य कैलाश चन्द्र शास्त्री अभिनन्द ग्रंथ, रींवा, पृ० 417–425

14. Jain, Anupam—1980 'महावीराचार्य, व्यक्तित्व एवं कृतित्व' जैन सन्देश-शोधांक, 47, पृ० 258–260

15. Lal, R. S.—1982 'Contribution of Mahaviracarya in the development of theory of Series' M. E. 15-2 (B) pp. 31-43

16. Jain, Anupam—1984 'Mahaviracarya–The Man & the Mathematician' 'Acta Ciencia Indica–Meerut.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपलब्ध पांडुलिपियाँ

गणितसार संग्रह की अनेकों पूर्ण एवं अपूर्ण पांडुलिपियाँ यत्र-तत्र ग्रंथ भण्डारों में विकीर्ण हैं। पूर्ण प्रतियों की अपेक्षा अपूर्ण प्रतियाँ अधिक हैं। गणितसार संग्रह के अंग्रेजी संस्करण के सम्पादन के समय रंगाचार्य ने मात्र 5 पांडुलिपियों का उपयोग किया था। हिन्दी संस्करण के सम्पादन में अंग्रेजी को ही आधार मानने के कारण नवीन सामग्री का उपयोग न हो सका था, मात्र परिशिष्ट (5) में कांरजा भण्डार की प्रतियों के पाठान्तर संकलित कर दिये गये थे। यदि नवीन संस्करण के सम्पादन के समय वर्तमान में उपलब्ध हुई नवीन पांडुलिपियों का प्रयोग किया जाये तो सन्देहपूर्ण स्थलों की अधिक समीचीन व्याख्या की जा सकती है।

अग्रांकित सारणी क्र०-1 में पूर्ण-अपूर्ण प्रतियों को सूचीबद्ध किया गया है। सूचनाओं का आधार विविध सूची-पत्रों में उपलब्ध विवरण है। अधिक प्रयास से अनेक पांडुलिपियों के प्राप्त होने की पूर्ण सम्भावना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणितसार संग्रह में निहित गणित

गणितसार संग्रह की रचना पाठ्य-पुस्तक शैली में की गई है, फलतः उसमें उस समय तक जैन परम्परा में उपलब्ध/विकसित लौकिक गणित विषयक ज्ञान को संक्षेप में समाहित करने का प्रयास किया गया है। जैन परम्परा को दृष्टिगत करते हुए यह तो कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ में निहित गणित जैनाचार्यों द्वारा विकसित/मान्य होगा किन्तु वह निश्चित रूप से महावीराचार्य की स्वयं की उपलब्धि होगी यह कहना समीचीन नहीं है। क्योंकि महावीराचार्य ने स्वयं इस ग्रंथ की सामग्री का मूल स्रोत परम्परित ज्ञान एवं आगम ग्रंथों को बताया है।[1] तथापि जो नियम एवं सूत्र वर्तमान में उपलब्ध साहित्य में सर्वप्रथम महावीराचार्य के गणितसार संग्रह में ही आये हैं उनके आविष्कार का श्रेय तदर्थ रूप से महावीराचार्य को दिया जा सकता है।

हम यहाँ क्रमिक रूप से लौकिक गणित के विविध विषयों के सन्दर्भ में गणितसार संग्रह में उपलब्ध सामग्री का संकलन एवं विश्लेषण करेंगे।

1· स्थान मान एवं मापन पद्धतियाँ

स्थान मान सूची[2]

1. इकाई	—10^0
2. दहाई	—10^1
3. सैकड़ा	—10^2
4. सहस्र	—10^3
5. दस सहस्र	—10^4
6. लक्ष	—10^5
7. दस लक्ष	—10^6
8. कोटि	—10^7
9. दस कोटि	—10^8
10. शतकोटि	—10^9
11. अरवुद	—10^{10}
12. न्युर्बुद	—10^{11}

---

[1] गणितसार संग्रह, 1/17, 18, 19, पृ० 3

[2] वही, 1/63–68, पृ० 8

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

13. खर्व	—10^{12}
14. महा खर्व	—10^{13}
15. पद्म	—10^{14}
16. महा पद्म	—10^{15}
17. क्षोणी	—10^{16}
18. महाक्षोणी	—10^{17}
19. शंख	—10^{18}
20. महाशंख	—10^{19}
21. क्षित्या	—10^{20}
22. महाक्षित्या	—10^{21}
23. क्षोभ	—10^{22}
24. महाक्षोभ	—10^{23}

माप-सारणियाँ

रेखा-माप[1]

अनन्त परमाणु	—	1 अणु
8 अणु	—	1 त्रसरेणु
8 त्रसरेणु	—	1 रथरेणु
8 रथरेणु	—	1 उत्तम भोगभूमि का बाल माप
8 उ० भो० बालमाप	—	1 मध्यम भोगभूमि का बालमाप
8 म० भो० बालमाप	—	1 जघन्य भोगभूमि का बालमाप
8 ज० भो० बालमाप	—	1 कर्मभूमि का बाल-माप
8 कर्मभूमि का बाल माप	—	1 लीक्षा माप
8 लीक्षा माप	—	1 तिल माप या सरसों माप[2]
8 तिल माप	—	1 यव माप
8 यव माप	—	1 अंगुल या व्यवहारांगुल
50 व्यवहारांगुल	—	1 प्रमाण या प्रमाणांगुल
वर्तमान नरांगुल	—	1 आत्मांगुल
6 आत्मांगुल	—	1 पादमाप (तिर्यंच)
2 पाद	—	1 वितस्ति

---

[1] गणितसार संग्रह, 1/25–31, पृ० 4 तुलना हेतु देखें तिलोयपण्णात्ती 1/92–132

[2] तिलोयपण्णत्ती में लीक्षा के पश्चात् जूं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2 वितस्ति	—	1 हस्त
4 हस्त	—	1 दण्ड[1]
2000 दण्ड	—	1 क्रोश
4 क्रोश	—	1 योजन (लघु योजन)

काल-माप[2]

असंख्यात समय	—	1 आवलि
संख्यात आवलि	—	1 उच्छ्वास
7 उच्छ्वास	—	1 स्तोक
7 स्तोक	--	1 लव
$38\frac{1}{2}$ लव	—	1 घटी
2 घटी	—	1 मुहूर्त
30 मुहूर्त	—	1 दिन
15 दिन	—	1 पक्ष
2 पक्ष	—	1 मास
2 मास	—	1 ऋतु
3 ऋतु	—	1 अयन
2 अयन	—	1 वर्ष

धारिता-माप (धान्य-माप)[3]

4 षोडशिका	—	1 कुडह
4 कुडह	—	1 प्रस्थ
4 प्रस्थ	—	1 आढक
4 आढक	—	1 द्रोण
4 द्रोण	—	1 मानी
4 मानी	—	1 खारी
5 खारी	—	1 प्रवर्तिका
4 प्रवर्तिका	—	1 वाह
5 प्रवर्तिका	—	1 कुम्भ

---

[1] तिलोयपण्णत्ती में दण्ड को धनुष, मूसल या नाली भी कहा है।

[2] तुलना हेतु देखें तिलोयपण्णत्ती–4/284–286

[3] गणितसार संग्रह, 1/36–38, पृ० 5

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुवर्ण भार-माप[1]

4 गण्डक	—	1 गुंजा
4 गुंजा	—	1 पण
8 पण	—	1 धरण
2 धरण	—	1 कर्ष
4 कर्ष	—	1 पल

रजत भार-माप[2]

2 धान्य	—	1 गुंजा
2 गुजा	—	1 माष
16 माष	—	1 धरण
$2\frac{1}{2}$ धरण	—	1 कर्ष या पुराण
4 कर्ष या पुराण	—	1 पल

लोहादि भार-माप[3]

4 पाद	—	1 कला
$6\frac{1}{4}$ कला	—	1 यव
4 यव	—	1 अंश
4 अंश	—	1 भाग
6 भाग	—	1 द्रक्षूण
2 द्रक्षूण	—	1 दीनार
2 दीनार	—	1 सतेर
$12\frac{1}{2}$ पल	—	1 तुला
10 तुला	—	1 भार

वस्त्र आभरण और वैत्रमाप[4]

20 युगल	—	कोटिका

भूमि-प्रमाण[5]

1 घन हस्त घनीभूत भूमि	—	3600 पल
1 घन हस्त ढीली भूमि	—	2030 पल

---

[1] गणितसार संग्रह, 1/39, पृ॰ 5

[2] वही, 1/40–412, पृ॰ 556

[3] वही, 1/42–44, पृ॰ 6

[4] वही, 1/45, पृ॰ 6

[5] वही, 8/3, पृ॰ 251

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईट प्रमाण[1]

1 हस्त × $\frac{1}{2}$ हस्त × 4 अंगुल ईट	—	इकाई ईट

काष्ठ-प्रमाण[2]

1 हस्त और 18 अंगुल	—	1 किष्कु
96 अंगुल लम्बे और 1 किष्कु चौड़े काष्ठखंड को आरे से काटने में किया गया कार्य	—	1 पट्टिका

छाया-प्रमाण[3]

मनुष्य की $\frac{1}{7}$ ऊँचाई	—	उसका पाद माप

अष्ट परिकर्म (शून्य गणित सहित)

संज्ञाधिकार एवं परिकर्म व्यवहार शीर्षक प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों में आपने संख्याओं पर गुणा, भाग, वर्ग, वर्ग मूल, धन एवं धनमूल नामक 6 परिकर्मों की चर्चा की है। संकलन एवं व्यकलन को अत्यन्त सरल मानकर छोड़ दिया है। उनके संगत श्रेणियों के संकलन एवं व्यकलन की चर्चा की है।

गुणा करने के सन्दर्भ में आपने चार विधियों का सोदाहरण वर्णन किया है।[4] भाग करने की सादृशापवर्तन की विधि के साथ ही आधुनिक विधि का भी वर्णन है। वर्ग करने की एक विशिष्ट रीति का भी आपने उल्लेख किया है।[5] विधि निम्नवत् है—

दाहिनी ओर से बायीं ओर की ओर अंक गिनने के क्रम में संख्या के अन्तिम अंक का वर्ग प्राप्त करो और तब इस अंक को द्विगुणित कर तथा एक संकेतन के स्थान तक दाहिनी ओर हटा देने के पश्चात् इस अन्तिम अंक को शेष स्थानों के अंकों द्वारा गुणित करो। इस तरह संख्या को शेष अंकों में प्रत्येक को एक-एक स्थान तक इसी विधि से हटाते जाओ। यह वर्ग करने की विधि है।

यह विधि निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगी।

---

[1] गणितसार संग्रह, 8/43$\frac{1}{2}$, पृ० 262

[2] वही, 8/63, 67, 67$\frac{1}{2}$, पृ० 268 एवं हिन्दी संस्करण परिशिष्ट 4

[3] वही, 9/26, पृ० 275

[4] वही, 2/1–17 पृ० 9–11 एवं सं० 13, पृ० 126–142

[5] वही, 2/31, पृ० 14

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

I	12^2	=	?				
	1^2	=	1				
	$2\times1\times2$	=		4			
	2^2	=			4		
	12^2	=	1	4	4		
II	131^2	=	?				
	1^2	=	1				
	2x1x3	=		6			
	2x1x1	=			2		
	3^2	=			9		
	2x3x1	=				6	
	1^2	=					1
	131^2	=	1	7	1	6	1

इस विधि का वैशिष्ट्य यह है कि उसमें

$$(A+B)^2 = A^2+2AB+B^2$$

अथवा

$$(A+B+C)^2=A^2+B^2+C^2+2AB+2BC+2AC$$

का भाव निहित है जो दो संख्याओं के योग का वर्ग करने की आधुनिक विधि के तुल्य है।

वर्गमूल, घन एवं घनमूल सम्बन्धी नियम भी उदाहरणों सहित दिये गये हैं।[1] आपने घन को तीन समान संख्याओं के गुणनफल से परिभाषित किया है एवं निम्न फल दिये हैं—

$$(A+B)^3=A^3+3A^2B+3AB^2+B^3$$

$$\& \; A^3=A(A+B)\;(A-B)+B^2(A-B)+B^3$$

यद्यपि घन का उपर्युक्त सूत्र पूर्ववर्ती गणितज्ञों को भी पता था। किन्तु महावीराचार्य ने इसका व्यापकीकरण (Generalization) करते हुए लिखा—

$$[A+B+C+D\cdots\cdots]^3=A^3+3A^2(B+C+D+\cdots\cdots)+$$
$$+3A(B+C+D\cdots\cdots)^2+(B+C+D\cdots\cdots)^3$$

धनात्मक एवं ऋणात्मक संख्याओं को जोड़ने, घटाने, गुणा एवं भाग करने सम्बन्धी नियम निम्नवत् हैं—

[1] गणितसार संग्रह, 2/36–60, पृ० 15–20

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धनात्मक संख्यायें	ऋणात्मक संख्यायें[1]
	$(-A)+(-B)=-(A+B)$
	$(A)-(-B)=A+B$
	$(-A)-(B)=-(A+B)$
$A\times B=AB$	$(-A)\times(-B)=AB$
	$(-A)\times(B)=-AB$
	$(A)\times(-B)=-AB$
$A\div B=A/B$	$(A)\div(-B)=A/B$
	$(A)\div(-B)=-A/B$
	$(-A)\div(B)=-A/B$

ऋणात्मक संख्याओं के वर्ग एवं वर्गमूल ज्ञात करने के संदर्भ में महावीराचार्य का वक्तव्य निम्न है—

धनं धनर्णयोर्वर्गोमूले स्वर्णे तयोः क्रमात् ।
ऋणं स्वरूपतो ऽवर्गो यतस्तस्मान्नं तत्पदम् ॥[2]

अर्थात् धनात्मक एवं ऋणात्मक राशि का वर्ग धनात्मक होता है और उस वर्गराशि के वर्गमूल क्रमशः धनात्मक एवं ऋणात्मक होते हैं। चूंकि वस्तुओं के स्वभाव में ऋणात्मक राशि वर्गराशि नहीं होती है। इसलिए उसका कोई वर्गमूल नहीं होता है।

यह कथन महावीराचार्य की प्रतिभा का परिचायक है। उन्होंने ऋणात्मक संख्या के वर्गमूल को वास्तविक संख्या नहीं स्वीकार किया एवं इस प्रकार काल्पनिक संख्याओं के विकास का पथ प्रशस्त किया। Bell के शब्दों में—

The first clear recognition about the imaginaries was Mahavira's extremely intelligent remark in the ninth century that in the nature of things negative number has no square root. He has mathematical insight enough to leave the matter there and not to proceeds to meaningless manipulation of unitelligible symbols.[3]

ऐतिहासिक अभिरुचि का विषय यह है कि यह अवलोकन Cauchy ने 1000 वर्ष बाद, 1847 ई० में किया।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि महावीराचार्य ने यह सूक्ष्म दृष्टि असंगति प्रदर्शन विधि (Method of Reduction ad absurdum) के

[1] गणितसार संग्रह, 2/36, पृ० 15–20
[2] वही, 1/52, पृ० 7
[3] देखे, सं० 21
[4] देखें, सं० 6, पृ० 26

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधार पर विकसित की होगी जो जैन आचार्यों में काफी पूर्व से प्रचलित थी। धवला में आचार्य वीरसेन (826 ई०) ने शंका समाधान के प्रसंगों पर इसका अनेकशः उपयोग किया है।

शून्य के सम्बन्ध में विभिन्न परिकर्मों की चर्चा महावीराचार्य ने की है। वे लिखते हैं कि—

ताड़ितः खेन राशिः खं सोऽविकारी हृतो युतः।
हीनोऽपि खवधादिः खं योगे खं योज्यरूपकम्॥[1]

अर्थात् कोई भी संख्या शून्य से गुणित होने पर शून्य हो जाती है और वह चाहे शून्य के द्वारा विभाजित अथवा शून्य द्वारा घटाई जावे या शून्य में जोड़ी जावे, बदलती नहीं है।

गुणा तथा अन्य क्रियायें शून्य के सम्बन्ध में शून्य की उत्पत्ति करती है और योग की क्रिया में शून्य वही संख्या हो जाता है, जिसमें वह जोड़ा जाता है। गणितीय रूप से—

$$A \times O = O$$
$$A + O = A$$
$$A - O = A$$
$$A \div O = A$$

प्रत्यक्षतः महावीराचार्य का गुणन, योग एवं व्यकलन के संदर्भ में नियम सत्य है किन्तु भाग के सन्दर्भ में उनका कथन सामान्य दृष्टि से आधुनिक गणित के अनुसार असत्य है। महावीराचार्य के पूर्ववर्ती श्रीधर (8 वी० शती ई०) ने शून्य से भाग देने का विषय छोड़ दिया था। उल्लेखनीय है कि अयथार्थ अनन्त के गणितानुसार इसका शुद्ध उत्तर 300 वर्ष पूर्व ब्रह्मगुप्त को पता था।[2] भास्कराचार्य (1150 ई०) ने इस प्रकार शून्य से भाग देने से प्राप्त होने वाले परिणाम को खहर की संज्ञा दी जिसका मान अयथार्थ अनन्त होता है।

इस सन्दर्भ में डॉ० हीरालाल जैन का सुझाव दृष्टव्य है। उनके अनुसार मान लो 20 वस्तुएँ 5 व्यक्तियों में बाँटनी है तब प्रत्येक व्यक्ति को 5 वस्तुएँ मिलेंगी किन्तु यदि इन 20 वस्तुओं का विभाजन शून्य व्यक्तियों के मध्य करना हो तब कोई भी व्यक्ति ही न रहने से वह संख्या अपरिवर्तित रहेगी।

हीरालाल जैन का यह सुझाव उपेक्षणीय नहीं है। इस बात की पर्याप्त सम्भावना है कि महावीराचार्य ने अपने परिणाम का निर्वचन वितरण के नियम के आधार पर किया हो जब वस्तुओं की संख्या में से असत (Nothing) वितरण करना हो तो संख्या अपरिवर्तित रहेगी।

---

[1] गणितसार संग्रह, 1/49, पृ० 7

[2] देखें, सं० I–II, पृ० 99

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावीर की काल्पनिक संख्याओं के सन्दर्भ में प्रदर्शित प्रतिभा की मुक्त कंठ से Bell ने प्रशंसा की है ऐसा प्रतिभावान गणितज्ञ ऐसी भयंकर भूल करेगा इसकी सम्भावना कम ही है।

परिकर्मों के विवेचन के सन्दर्भ में महावीराचार्य द्वारा संख्याओं पर गुणन की क्रिया से बनायी जाने वाली अंकों की मालाओं का उल्लेख असंगत न होगा। विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए आज का अध्यापक अनेक साधनों का उपयोग करता है ठीक उसी प्रकार महावीराचार्य ने यह मनोरंजक प्रकरण[1] गुणा की क्रिया समझाने हेतु जोड़ा।

139 × 109	=	15151
27994681 × 441	=	12345654321
12345678 × 9	=	111 111 111
333333666667 × 33	=	11,0000, 11,0000 11
14287143 × 7	=	1000, 1000 1
142857143 × 7	=	100000000 1
152207 × 73	=	11, 111, 111
11011011 × 91	=	1002002001

भिन्नों पर परिकर्म

भारत में भिन्नों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से होता आया है। ऋग्वेद, संहिताओं आदि में भी भिन्नों का उल्लेख है। प्राचीन जैन धर्मग्रन्थों में कला सवर्ण के नाम से भिन्नों की चर्चा है। सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपसमास, तत्वार्थधिगमसूत्र भाष्य, बृह्‌तक्षेत्रसमास, धवला आदि महावीराचार्य के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में भिन्नों के व्यापक प्रयोग उपलब्ध है।

गणितसार संग्रह के तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय, क्रमशः कलासवर्ण एवं प्रकीर्णक व्यवहार, पूर्णतः भिन्नों हेतु समर्पित हैं। इनमें भिन्नों के प्रकार, इबारती प्रश्नों, भिन्नों पर संक्रियाओं का व्यापक विवेचन है। किन्तु दो बिन्दु उल्लेखनीय हैं।

1. महावीराचार्य ने 2 भिन्नों के योग के लिए प्राचीन काल से चली आ रही हर साम्यीकरण रीति को विकसित करते हुए आधुनिक लघुत्तम समापवर्त्य का नियम अविष्कृत किया एवं लघुत्तम समापवर्त्य को निरुद्ध की संज्ञा दी।

छेदापवर्तकानां लब्धानां चाहतो निरुद्धः स्यात्।
हर हृतनिरुद्ध गुणिते हारांशगुणे समोहारः॥[2]

---

[1] गणितसार संग्रह, 2/11–17, पृ० 9–11

[2] वही, 3/56, पृ० 49

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् हरों के सभी सम्भव गुणनखण्डों और उनके सभी अन्तिम भजनफलों के सन्तत गुणन से निरुद्ध (लघुत्तम समापवर्त्य) प्राप्त होता है। निरुद्ध को हरों द्वारा भाजित करने से प्राप्त भजनफलों में हरों और अंशों का गुणन करते हैं। इस प्रकार से प्राप्त हरों एवं अंशों सम्वन्धी अपवर्त्यों के हर समान होते हैं।

उदाहरणार्थ,

$\frac{1}{2}, \frac{1}{6}, \frac{1}{12}, \frac{1}{20}, \frac{1}{30}, \frac{1}{24}, \frac{1}{8}$, को जोड़ने के लिये आपके नियमानुसार

$$
\begin{aligned}
2 &= 2\\
6 &= 2\times 3\\
12 &= 2\times 2\times 3\\
20 &= 2\times 2\times 5\\
30 &= 2\times 3\times 5\\
24 &= 2\times 2\times 2\times 3\\
8 &= 2\times 2\times 2
\end{aligned}
$$

अर्थात् निरुद्ध $=2\times2\times2\times3\times5=120$ हुआ। अव भिन्नों को जोड़ने हेतु

$$\left(\frac{1\times60}{2\times60}\right)+\left(\frac{1\times20}{6\times20}\right)+\left(\frac{1\times10}{12\times10}\right)+\left(\frac{1\times6}{20\times6}\right)+\left(\frac{1\times4}{30\times4}\right)$$

$$+\left(\frac{1\times5}{24\times5}\right)+\left(\frac{1\times15}{8\times15}\right)$$

$$=\frac{60}{120}+\frac{20}{120}+\frac{10}{120}+\frac{6}{120}+\frac{4}{120}+\frac{5}{120}+\frac{15}{120}$$

$$=\frac{60+20+10+6+4+5+15}{120}=\frac{120}{120}=1$$

यही भिन्नों के योग का एवं लघुत्तम समापवर्त्य निकालने का आधुनिक नियम है। उल्लेखनीय है कि लघुत्तम समापवर्त्य निकालने की यह रीति यूरोप में 15वीं शती ई० में विकसित हुई. एवं 17वीं शती ई० में प्रचलित हुई।[1]

एकांशक भिन्न—इकाई भिन्न या रूपांशक भिन्न की संज्ञा से भी अभिहित की जाने वाली यह विशेष प्रकार की भिन्न महावीराचार्य की मौलिक देन है। इस भिन्न की विशेषता यह होती है कि इसका अंश सदैव 1 होता है। डॉ० ब्रजमोहन ने लिखा है कि—

[1] देखें सं०–14, पृ० 169

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य किसी भारतीय गणितज्ञ ने इसका स्पर्श भी नहीं किया है।[1] रूपांशक भिन्न के बारे में अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रत्येक स्थिति में सत्य रहने वाले निम्नलिखित नियम आपने दिये—

1. 1 को n संख्याओं के रूपांशक भिन्नों के रूप में व्यक्त करना।[2]

इस हेतु 1 से प्रारम्भ करके से क्रमिक रूप से गुणा करते हुए संख्यायें लिखो,

$$1, \frac{1}{3}, \frac{1}{3^2}, \frac{1}{3^3} \ldots\ldots \frac{1}{3^{n-2}} \; \frac{1}{3^{n-1}}$$

पुनः प्रथम संख्या को 1/2 एवं अन्तिम को 3/2 से गुणा करके योग करने पर इकाई प्राप्त होती है। अर्थात् प्रथम हर को 2 एवं अन्तिम हर को 2/3 से गुणा करें।

या, $$1 = \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \frac{1}{3^2} + \frac{1}{3^3} + \ldots + \frac{1}{3^{n-2}} + \frac{3}{2 \cdot 3^{n-1}}$$

$$= \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \frac{1}{9} + \cdot + \cdot \frac{1}{3^{n-2}} + \frac{1}{2 \cdot 3^{n-2}}$$

यदि n=4 तो

$$1 = \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \frac{1}{9} + \frac{1}{2 \cdot 9}$$

$$= \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \frac{1}{9} + \frac{1}{18}$$

$$= \frac{9+6+2+1}{18} = \frac{18}{18} = 1$$

2. 1 को विषम संख्या के रूपांशक भिन्नों के योग के रूप में व्यक्त करना।[3]

इस हेतु महावीराचार्य के नियमानुसार 2 से प्रारम्भ करके 1, 1 बढ़ाते हुए संख्याओं को 2n तक लेते हैं। अर्थात् 2, 3, 4, 5....2n पदों तक।

---

[1] देखें सं० 2, पृ० 81

[2] गणितसार संग्रह, 3/75, पृ० 52

[3] वही, 3/77, पृ० 53

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब इन संख्याओं को परस्पर अगली वाली संख्या से गुणा करके एवं $\frac{1}{2}$ से गुणा करके क्रमशः रूपांशक भिन्नों के हरों के रूप में लिखते हैं। अन्तिम राशि 2n है। अतः उसके आगे कोई राशि न होने के कारण मात्र $\frac{1}{2}$ से गुणा करके लिखते हैं।

बीजीय रूप से,

$$1 = \frac{1}{2\cdot 3\cdot \frac{1}{2}} + \frac{1}{3\cdot 4\cdot \frac{1}{2}} + \frac{1}{4\cdot 5\cdot \frac{1}{2}} + \ldots + \frac{1}{(2n-1).2n\ \frac{1}{2}} + \frac{1}{2n\cdot \frac{1}{2}}$$

$$= \frac{1\cdot}{3} + \frac{1}{3\cdot 2} + \frac{1}{2\cdot 5} + \ldots\ldots + \frac{1}{n(2n-1)} + \frac{1}{n}$$

यदि n=4 तो

$$1 = \frac{1}{2\cdot 3\frac{1}{2}} + \frac{1}{3\cdot 4\frac{1}{2}} + \frac{1}{4\cdot 5\frac{1}{2}} + \frac{1}{5\cdot 6\frac{1}{2}} + \frac{1}{6\cdot 7\frac{1}{2}} + \frac{1}{7\cdot 8\frac{1}{2}} + \frac{1}{8\cdot \frac{1}{2}}$$

$$= \frac{1}{3} + \frac{1}{6} + \frac{1}{10} + \frac{1}{15} + \frac{1}{21} + \frac{1}{28} + \frac{1}{4}$$

$$= \frac{420}{420} = 1$$

3. किसी दी गई रूपांशक भिन्न को अनेक भिन्नों के योग के रूप में व्यक्त करना।

यदि दी हुई भिन्न का हर पहली भिन्न का आंशिक हर होता है। तो उस आंशिक हर में अपने अंश को जोड़ देने पर जो मिलता है वह दूसरी भिन्न का आंशिक हर होता है इत्यादि। प्रत्येक आंशिक हर को अगली आंशिक हर से तथा अन्तिम आंशिक हर को उसके अंश से गुणा करने पर उन भिन्नों के वास्तविक हरों की प्राप्ति होती है।[1]

बीजीय रूप से यदि $\frac{1}{n}$ को चार ऐसी भिन्नों में व्यक्त करना है जिनके अंश a, b, c, d, हो तो

$$\frac{1}{n} = \frac{a}{n(n+a)} + \frac{b}{(n+a)\ (n+a+b)} + \frac{c}{(n+a+b)\ (n+a+b+c)} + \frac{d}{(n+a+b+c)\ (d)}$$

[1] गणितसार संग्रह, 3/78, पृ० 54

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि a=b=c=d=1 एवं n=4

$$\frac{1}{4}=\frac{1}{4\cdot5}+\frac{1}{5\cdot6}+\frac{1}{6\cdot7}+\frac{1}{7\cdot1}$$

$$=\frac{1}{20}+\frac{1}{30}+\frac{1}{42}+\frac{1}{7}$$

$$=\frac{21+14+10+60}{420}=\frac{105}{420}=\frac{1}{5}$$

यदि a=b=c=d=1 एवं n=5

$$\frac{1}{5}=\frac{1}{5\cdot6}+\frac{1}{6\cdot7}+\frac{1}{7\cdot8}+\frac{1}{8\cdot1}$$

$$=\frac{1}{30}+\frac{1}{42}+\frac{1}{56}+\frac{1}{8}$$

$$=\frac{1}{5}$$

यहाँ a=b=c=d=1 होना मात्र एक विशेष स्थिति है यदि a=b=c=d=1 न हो तो भी नियम सत्य होगा किन्तु प्राप्त भिन्नें एकांशक नहीं होंगी।

4. दी हुई भिन्न को दो रूपांशक भिन्नों के योग के रूप में व्यक्त करना।[1]

इस हेतु दी हुई भिन्न के हर में से किसी ऐसी संख्या को जोड़ दें कि योगफल में भिन्न के अंश से भाग देने पर वह पूर्णतः विभाजित हो जाये। इस प्रकार प्राप्त लब्धि प्रथम भिन्न का हर होगी। पुनः इस लब्धि एवं मूल भिन्न के हर का गुणनफल दूसरी भिन्न का हर एवं जोड़ी गई संख्या दूसरी भिन्न का अंश है।

माना मूल भिन्न $\frac{M}{N}$ है। यदि G एक ऐसी संख्या है जिसे N में जोड़ने पर

$\frac{N+G}{M}$=पूर्ण संख्या माना S हो तो

$$\frac{M}{N}=\frac{1}{S}+\frac{G}{SN} \qquad (M<N)$$

---

[1] गणितसार संग्रह, 3/80, पृ० 54

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$\frac{G}{SN}$ पर यही क्रिया दुहराने पर एकांशक भिन्नों की शृंखला मिल जायेगी।

माना कोई भिन्न $\frac{3}{5}$ है तो यदि M=3, N=5 तो $\frac{5+1=6}{3\quad 3}=2$

अत: G=1, S=2

$$\frac{3}{5}=\frac{1}{2}+\frac{1}{2\cdot 5}=\frac{1}{2}+\frac{1}{10}$$

5. किसी दी हुई रूपांशक भिन्न का दो अन्य रूपांशक भिन्नों के योग के रूप में व्यक्त करना।

इस हेतु दो नियम हैं। माना $\frac{1}{n}$ दी हुई भिन्न है एवं एक ऐसी कल्पित संख्या है कि n. (p—1) से विभाज्य हो तो

$$\frac{1}{n}=\frac{1}{p.n}+\frac{1}{\frac{p.n}{(p-1)}}$$

इस सन्दर्भ में दूसरा नियम यह कि यदि

$\frac{1}{n}=\frac{1}{a.b}$ जहाँ $b > 1$

तो $\frac{1}{n}=\frac{1}{ab}=\frac{1}{a(a+b)}+\frac{1}{b(a+b)}$

6. किसी दी हुई भिन्न को अन्य दो भिन्नों के योग के रूप में व्यक्त करना जबकि दोनों भिन्नों के अंश दिये हों।[2]

एक भिन्न के अंश को किसी उपयुक्त कल्पित संख्या से गुणा करके गुणनफल में दूसरी भिन्न का अंश जोड़ दो। इस प्रकार प्राप्त योग को दी हुई भिन्न के अंश से निःशेष भाग कर दो। लब्धि को कल्पित संख्या से भाग करो और इस प्रकार जो लब्ध स्वरूप आवे उसे दी हुई भिन्न के हर से गुणा करो। यही गुणनफल प्रथम भिन्न का अभीष्ट हर है। इस प्रकार इस हर को कल्पित संख्या से गुणा करने पर जो प्राप्त होगा वह दूसरी का हर होगा।

---

[1] गणितसार संग्रह, 3/85, पृ० 55

[2] वही, 5/2, पृ० 83.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीजीय रूप से यदि दी गई भिन्न m/n है तथा दिये गये अंश a, b हैं तो p को कल्पित संख्या मानने पर

$$\frac{m}{n}=\frac{a}{\left(\frac{ap+b}{m}\right)\frac{n}{p}}+\frac{b}{\left(\frac{(ap+b)}{m}\right)\frac{n}{p}p}$$

यहाँ n, p से विभाज्य होना जरूरी है।

$$\text{यदि } n=p \text{ तो } \frac{m}{n}=\frac{a}{\frac{(ap+b)}{m}}+\frac{b}{\frac{ap+b}{m}n}$$

7. दी हुई भिन्नों को भिन्नों के सम संख्या के रूप में व्यंजित करना जबकि उन भिन्नों के अंश दिये हो।[1]

इस हेतु दी गई भिन्न को पहले उतनी एकांशक भिन्नों के योग के रूप में रखो जितने इष्ट भिन्नों के जोड़े हैं। फिर उन एकांशक भिन्नों से दी हुई भिन्न को दो भिन्नों के योग के रूप में रूपान्तरित करने की विधि से इष्ट भिन्नों के हरों का साधन करो।

उपरोक्त विवेचन से महावीराचार्य का भिन्नों के प्रयोग में लाघव स्पष्ट है।

त्रैराशिक एवं मिश्र समानुपात

त्रैराशिक का पाटी गणित के विषयों के अन्तर्गत विशेष महत्व है। इसका अर्थ तीन राशियाँ हैं। प्रमाण, फल एवं इच्छा। इन राशियों में से 2 ज्ञात होने पर तीसरी का मान ज्ञात किया जा सकता है।

महावीराचार्य ने त्रैराशिक को अपने ग्रन्थ में अत्यधिक महत्व दिया है एवं ग्रन्थ के पाँचवें अध्याय का बहुभाग त्रैराशिक एवं लगभग समान प्रकृति के विषयों पंचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक (सरल एवं व्यस्त) हेतु समर्पित है।

त्रैराशिक के बारे में आपने लिखा है कि 'त्रैराशिक में जब फल और इच्छा एक जाति के होते हैं तब फल और इच्छा के गुणनफल को प्रमाण से भाग देने पर इच्छाफल मिलता है।[2]

$$\text{अर्थात् इच्छाफल}=\frac{\text{फल}\times\text{इच्छा}}{\text{प्रमाण}}$$

[1] गणितसार संग्रह 3/89, पृ० 57

[2] वही, 5/2, पृ० 83

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदाहरणार्थ—2 रुपये में एक किलो आम मिलते हैं तो 6 रुपये में कितने आम मिलेंगे।

सूत्रानुसार इच्छाफल $= \frac{1 \times 6}{2} = 3$ कि० ग्रा०

व्यस्त त्रैराशिक के संदर्भ में अर्थात् जब एक राशि का प्रमाण बढ़ने पर फल घटता हो गुणन एवं भाग की क्रिया को त्रैराशिक के नियम के विपरीत कर देते हैं। अर्थात्,

$$\text{इच्छाफल} = \frac{\text{प्रमाण} \times \text{फल}}{\text{इच्छा}}$$

उदाहरणार्थ, शुद्ध स्वर्ण (16 वर्ण) के 90 के लिए 9 वर्ण का स्वर्ण कितना होगा।

सूत्रानुसार—$\frac{16 \times 90}{9} = 160$

पंचराशिक के सन्दर्भ में आचार्य ने लिखा है कि स्वस्थान से फल को अन्य स्थान में पक्षान्तरित करो (जहाँ वैसी ही मूर्तराशि आवेगी) (तब इष्ट उत्तर को प्राप्त करने के लिये विभिन्न राशियों की) (बड़ी संख्याओं वाली पंक्ति को) सबके साथ गुणित करने के पश्चात् सबको साथ लेकर गुणित की गई विभिन्न राशियों को छोटी संख्याओं वाली पंक्ति द्वारा विभाजित करना चाहिये। परन्तु जीवित पशुओं को बेचने एवं खरीदने के प्रश्नों में केवल उन्हें प्ररूपण करने वाली संख्याओं के सम्बन्ध में ही पक्षान्तरण करते हैं।

यह नियम निम्न प्रश्न से स्पष्ट हो जायेगा—

एक मनुष्य जो 9 मानी गेहूँ 3 योजन तक ले जाकर 60 पण प्राप्त करता है तो वह एक कुम्भ एवं एक वाह गेहूँ 10 योजन तक ले जाकर क्या करेगा।[1]

(1 कुम्भ + बाह = 180 मानी तालिका के अनुसार)

9 मानी	1 बाह + 1 कुम्भ
	10 योजन
3 योजन	
60 पण	

जब यहाँ फल, जो 60 पण है, को अन्तिम पंक्ति में पक्षान्तरित करते हैं तब

9 मानी	180 मानी
3 योजन	10 योजन
	60 पण

$$\text{इच्छाफल} = \frac{180 \times 10 \times 60}{9 \times 3} = 4000 \text{ पण}$$

[1] गणितसार संग्रह, 5/32, पृ० 89

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसे आधुनिक विधि में निम्न प्रकार करते हैं :

मानी	योजन	पण
9	3	60
180 ↓	10 ↓	x ↓

$$\left.\begin{matrix} 9 : 180 \\ 3 : 10 \end{matrix}\right\} :: 60 : x$$

$$9 \times 3 \times x = 180 \times 10 \times 60$$

$$x = \frac{20 \times 10 \times 20}{9 \times 3} = 4000 \text{ पण}$$

सप्तराशिक नवराशिक आदि के सन्दर्भ में भी यहीं नियम कार्य करता है। इन सभी को व्यस्त स्थितियों सहित उदाहरणों के माध्यम से समझाया गया है।

समानुपात विषयक कुछ प्रश्न मिश्रक व्यवहार में भी उपलब्ध हैं। वहाँ इन्हें कुट्टीकार की संज्ञा दी गई है।

गणितसार संग्रह में विचित्र कुट्टीकार शीर्षक गणित का एक प्रकार आया है। यह सिद्धान्त अंकगणित की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसके अनुसार बीजगणित के बड़े-बड़े प्रश्न समझाये जा सकते हैं। अन्य भारतीय गणितज्ञों ने जिन प्रश्नों को चक्रवात एवं वर्ग प्रकृति के नियमों से हल किया है। वे इस रीति से हल किये जा सकते हैं।[1]

महावीराचार्य ने एकपत्रीकरण के स्थान पर एकीकरण शब्द प्रयोग किया था जिसका रंगाचार्य ने औसतीकरण (averaging) अनुवाद किया था किन्तु यह अनुवाद उचित नहीं प्रतीत होता है। एकपत्रीकरण अथवा एकीकरण का अर्थ तो कई दस्तावेजों को एक करना है।[2]

खात व्यवहार प्रकरण में आचार्य ने किसी ठोस गड्ढे का आयतन ज्ञात करते हुए भारित माध्य का सुन्दर प्रयोग किया है।[3] डॉ॰ गुप्ता के शब्दों[4] में

'Ane legent principle of averaging by any number of sections (Instead of merely base and top) was given by Mahavira (850 A. D.) Set f (aibc) denote the area of a section as a function of its linear dimensions. According to Mahavira's rule we have,

---

[1] गणितसार संग्रह, 6/221, पृ॰ 147

[2] देखें सं॰ 14, पृ॰ 183

[3] देखें गणितसार संग्रह, 8/9–11, पृ॰ 253

[4] R. C. Gupta, Process of Averaging in Ancient & Medieval Mathematics, Ganita Bharati (Delhi), 3 (1, 2) pp. 32-42 (1981), p. 36

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$v_1 = h\ [f\ (a_1, b_1....) + f\ (a_2,\ b_2....) + ...]/n$$

$$v_2 = hf\ \left[\ \left(\frac{a_1 + a_2 + ...}{n}\right)\ \left(\frac{b_1 + b_2 + ...}{n}\right)....\ \right]$$

Accurate volume

$$v = \frac{\alpha v_1 + \beta v_2}{\alpha + \beta}$$ which is a weighted average.

क्रमचय एवं संचय

जैन आगम ग्रन्थों में क्रमचय एवं संचय का विषय अति प्राचीन काल से यथेष्ट महत्त्व एवं विस्तार के साथ भंग अथवा विकल्प गणित की संज्ञा के अन्तर्गत चर्चित होता रहा है फलतः गणितसार संग्रह सदृश ग्रन्थ में उसका उल्लेख स्वाभाविक ही है। इस विषय पर गणितसार संग्रह में उपलब्ध संक्षिप्त विवरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आगम ग्रन्थों में n वस्तुओं (निश्चित संख्या) में से 2, 3, 4 आदि वस्तुओं के बनने वाले समूहों की संख्या ज्ञात करने के सूत्र दिये हैं किन्तु उसमें n वस्तुओं में γ वस्तुओं के चयन का सामान्य सूत्र नहीं दिया है।

महावीराचार्य का उल्लेख निम्वत् है।

प्रस्तार योग भेदस्य सूत्रम—

एकाद्येकोत्तरतः पदमूर्ध्वाधर्यतः क्रमोत्क्रमशः।

स्थाप्य प्रतिलोमहघ्नं प्रतिलोमघ्नं भाजितं सारम।

अर्थात् दी हुई वस्तुओं में (सम्भव) संचयों के प्रकारों सम्बन्धी नियम—

'एक से आरम्भ कर संख्याओं को, दी गई वस्तुओं की संख्या तक एक द्वारा बढ़ाकर, नियमित क्रम में एवं व्यस्त क्रम में (क्रमशः) एक ऊपर एवं एक नीचे क्षैतिज पंक्ति में लिखो। यदि ऊपर की पंक्ति में दाहिने से बाई ओर लिया गया (एक दो तीन अथवा अधिक संख्याओं के संगत) गुणनफल नीचे की पंक्ति में भी दाहिने से बाई ओर को लिये गये (एक दो तनी अथवा अधिक संख्याओं के संगत) गुणनफल द्वारा भाजित किया जाय। तो प्रत्येक दशा में ऐसे संचय की इष्ट राशि फलस्वरूप प्राप्त होती है।' बीजीय रूप से

---

[1] गणितसार संग्रह, 6/218, पृ०–146

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$^{n}c_{r} = \frac{n(n-1)(n-2)....(n-r+1)}{1 \cdot 2.3..........r}$$

$$= \frac{n!}{r!\,(n-r)!}$$

उल्लेखनीय है कि यही नियम यूरोप से 17वीं शती ई० में Herign (1634) द्वारा पुनः अविष्कृत हुआ।[1]

श्रेणी व्यवहार गणित

अत्यन्त प्राचीन काल से गणितज्ञों एवं गणित में रुचि रखने वालों की रुचि अंकों से निर्मित श्रेणियों में रही है। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त जैन साहित्य में कल्पसूत्र (दूसरी शती ई० पू०) में सर्वप्रथम श्रेणियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है परवर्ती ग्रन्थों तथा आर्यभट्ट एवं ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थों में इस विषय पर सामग्री मिलती है किन्तु महावीराचार्य के गणितसार संग्रह में श्रेणियों का अत्यन्त व्यापक एवं व्यवस्थित विवेचन उपलब्ध होता है। लाल के शब्दों में—

No doubt his (Mahaviracarya's) predecessors Aryabhata-I (476 A. D.) and Brahmagupta (599 A. D.) had contribution to the subject yet Mahaviracarya can be named to be the first amongst them, who put the subject elaborately using lucid method and charming language.[2]

महावीराचार्य के गणितसार संग्रह में उपलब्ध श्रेणी व्यवहार के प्रकरण को सम्यक रूप से हृदयंगम करने हेतु कतिपय पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान आवश्यक है।

1. आदि, मुख, प्रथम पद	—	श्रेणी का प्रथम पद	(a)
2. भूमि, अन्यघन,	—	श्रेणी का अन्तिम पद	
3. चय, प्रचय,	—	श्रेणी के विभिन्न पदों के बीच अन्तर (सार्व अन्तर)	(d)
4. गच्छ	—	पदों की संख्या	(n)
5. आदिघन एवं उत्तरधन	—	सामान्तर श्रेणी का प्रत्येक पद प्रथम पद एवं प्रचय में किसी गुणक योग से बनता है। अतः समान्तर श्रेणी के n पदों का	

[1] Smith, History, vol.–2, p–527

[2] R. S. Lal, Contribution of Mahaviracarya to the Development of series, M. E. (Shivan), 15–2, 1981, pp. 31–41

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग निकालते समय हमें n प्रथम पद एवं प्रचय के गुणकों का योग प्राप्त होता है। प्रथम पदों का योगफल आदि-घन तथा प्रचय के गुणकों का योगफल उत्तरघन कहलाता हैं।

माना श्रेणी $a, a+d, a+2d, \ldots\ldots a+(n-1)d$ है।
तो श्रेणी के n पदों का योग

$$S = (a+a+\ldots n \text{ पद}) + (d+2d+\ldots(n-1)d)$$
$$= na + d\,[1+2+3\ldots\ldots(n-1)]$$
$$= \text{आदिघन} + \text{उत्तरघन}$$

6. सर्वघन — आदिघन एवं उत्तरघन का योग सर्वघन माना S कहलाता है।

7. मध्यघन — $\frac{\text{प्रथम पद} + \text{अन्तिम पद}}{2}$

— $\frac{(a) + \{a+(n-1)d\}}{2}$

8. आदि मिश्रघन — आदिघन + सर्वघन = $a+S$
9. उत्तर मिश्रघन — प्रचय + सर्वघन $(d+S)$
10. गच्छ मिश्रघन — गच्छ + सर्वघन $(n+S)$
11. सर्वमिश्रघन — $(a+d+n) \times S$
12. गुणघन — n पदों की गुणोत्तर श्रेणी का गुणनघन $(n \times 1)$ वे पद के तुल्य होता है अर्थात् $a\, r^n$
13. व्युत्कलित — किसी श्रेणी के कुछ निश्चित पदों को छोड़ देने पर शेष बचे समस्त पदों का योग व्युत्कलित कहलाता है।

महावीराचार्य ने जिन श्रेणियों की चर्चा की है उनको मुख्तः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

समान्तर श्रेणी

समान्तर श्रेणी के पदों का योग ज्ञात करने सम्बन्धी नियम

श्रेणी के पदों की संख्या (गच्छ) को एक द्वारा घटाया जाता है और तब प्राप्त फल को आधा कर प्रचय द्वारा गुणित किया जाता है, इसे जब श्रेणी के प्रथम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद के साथ मिलाकर पदों की संख्या से गुणित करते हैं तो समान्तर श्रेणी के समस्त पदों का योगफल प्राप्त होता है ।[1]

बीजीय रूप से $S=\left\{\frac{n-1}{2}\times d+a\right\} n.$

एक अन्य रूप, में[2]

$$s=\left\{\frac{(n-1)d+2a}{2}\right\} n$$

उदाहरण—एक श्रेष्ठ श्रावक एक-एक कर पाँच मन्दिरों में 2 मणियों से आरम्भ कर उत्तरोत्तर 3 मणि बढाता हुआ भेंट चढ़ाता है । हे गणितज्ञ ! कहो कि उनकी कुल संख्या क्या है ?[3]

यहाँ $a=2, d=3, n=5$

$$S=\left\{\frac{5-1}{2}\times 3+2\right\} 5$$
$$=(\tfrac{4}{2}\times 3+2)5$$
$$=(2\times 3+2)5$$
$$=8\times 5$$
$$=40$$

गच्छ निकालने का नियम—(प्रथम पद की दुगुनी) राशि एवं प्रचय के अन्तर के वर्ग में श्रेणी के योग द्वारा गुणित प्रचय की आठ गुनी राशि जोड़ते हैं । प्राप्त योगफल के वर्गमूल में प्रचय जोड़ते हैं एवं परिणामी राशि आधी करते हैं इसमें प्रथमपद ह्रासित कर प्रचय द्वारा विभाजित करते हैं तो श्रेणी के पदों की संख्या प्राप्त होती है ।[4]

बीजीय रूप से

$$n=\sqrt{\frac{\frac{(2a-d)+8.\,s.\,d+d}{2}-a}{d}}$$

प्रथम पद निकालने का नियम—श्रेणी के योग को उत्तरधन द्वारा ह्रासित करने पर प्राप्त फल को पदों की संख्या द्वारा विभाजित करने पर श्रेणी का प्रथम पद प्राप्त होता है ।[5]

---

[1] गणितसार संग्रह, 2/61, पृ० 20
[2] वही, 2/62, पृ० 20
[3] वही, 2/66, पृ० 22
[4] वही, 2/69, पृ० 22
[5] वही, 2/77, पृ० 24

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$\text{बीजीय रूप से } a = \frac{S - \frac{n(n-1).d}{2}}{n}$$

प्रचय निकालने का नियम—श्रेणी का योग आदिधन द्वारा ह्रासित किया जाता और इसे पदों की संख्या द्वारा ह्रासित पदों की संख्या के वर्ग द्वारा निरूपित राशि की आधी राशि द्वारा विभाजित करने पर प्रचय प्राप्त होता है।[1]

$$\text{बीजीय रूप से } d = \frac{s - n\,a}{(n^2 - n)/2}$$

आदिधन[2] एवं प्रचय[3] के निम्न नियम भी दिये हैं—

$$a = \frac{s}{n} - \frac{n-1}{2}d$$

$$a = \left[\frac{2s}{n} - (n-1)d\right]\Big/2$$

$$d = [s/n - a]/(n-1)/2$$

$$d = \left[\frac{2s}{n} - 2a\right]\Big/(n-1)$$

विविध मिश्रधनों के पदों में आदिधन, प्रचय, गच्छ के मान—मिश्रधन को उत्तरधन से ह्रासित कर, एक अधिक पदों की संख्या द्वारा विभाजित किया जाता है तो प्रथम पद प्राप्त होता है। मिश्रधन को आदिधन से ह्रासित कर और तब पदों की संख्या तथा एक कम पदों की संख्या की आधी राशि के गुणनफल में एक जोड़कर प्राप्त हुई राशि द्वारा विभाजित करते हैं, तो प्रचय प्राप्त होता है। मिश्रधन में से पदों की संख्या विपरीत (भंग) करने में पदों की संख्या को प्राप्त करने का नियम ही प्रयुक्त करते हैं जबकि सब पदों को संवादरूप से (Correspondingly) बढ़ाने के लिए प्रथम पद को एक द्वारा बढ़ा हुआ मान लिया जाये।[4]

बीजीय रूप से

$$a = \frac{s' - \frac{n(n-1)}{2}d}{n+1}$$ यहाँ s' आदि मिश्रधन है।

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/73, पृ० 198

[2] वही, 7/74, 7/76, पृ० 199, 200

[3] वही, 7/74, 7/75, पृ० 199

[4] वही, 7/80–82 पृ० 200, 201

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$d = \frac{s'' - na}{\frac{n(n-1)}{2}} + 1$$ यहाँ s'' उत्तर मिश्रधन है।

पुन: $s = a + (a + d) + (a + 2d) \cdots\cdots$ पदों पक

$s''' = (a+1) + (a+1) + d + (a+1) + 2d + \cdots\cdots$ n पदों तक

$$= na + n + d[1 + 2 + \cdots\cdots (n-1)]$$

$$= n(a+1) + d \; \frac{(n-1)\, n}{2}$$

$$= \frac{n}{2} \; [2 \; (a+1) + (n-1) \; d]$$

यह एक द्विघात समीकरण है जिससे n का मान s''', a एवं d का मान ज्ञात होने पर ज्ञात किया जा सकता है।

इन नियमों का अनुप्रयोग करते हुए जो साधित उदाहरण दिये हैं उसे बीजीय रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

a का मान ज्ञात करो, जबकि $s' = 42$, $d = 3$, $n = 5$

d का मान ज्ञात करो, जबकि $s'' = 43$, $a = 2$, $n = 5$

n का मान ज्ञात करो, जबकि $s''' = 45$, $a = 2$, $d = 3$

व्युत्कलित—किसी दी हुई श्रेणी में आरम्भ से चुना हुआ कोई भाग इष्ट कहलाता है एवं शेष श्रेणी के पदों का योग व्युत्कलित कहलाता है।

आचार्य ने इष्ट (Patrial sum) एवं व्युत्कलित (Sum of Reminder Series) ज्ञात करने हेतु निम्न नियम प्रतिपादित किया है।

श्रेणी के कुल पदों की संख्या को चुने हुए पदों की संख्या से मिला लो और अपनी चुनी हुई पदों की संख्या अलग से लो। इन राशियों में से प्रत्येक राशि को एक द्वारा आधी करो और तब प्रचय द्वारा गुणित करो, और तब प्रत्येक परिणाम में प्रथमपद को जोड़ दो। प्राप्त परिणामी राशियों को जब क्रमशः शेष पदों की संख्या तथा चुने हुए पदों की संख्या द्वारा गुणित करते हैं तो क्रमशः शेष श्रेणी का योग और श्रेणी के चुने हुए भाग का योग प्राप्त होता है।[2]

बीजीय रूप से

$$\text{इष्ट } (Sp) = \left\{ \frac{(p-1)}{2} \, d + a \right\} d$$

[1] गणितसार संग्रह, पृ० 32, पादटिप्पणी

[2] वही, 2/106, पृ० 33

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्युत्कलित $(Sr)=\left[\left(\frac{n+p-1}{2}\right)d+a\right](n-d)$

यहाँ p=चुनी गई श्रेणी के पदों की संख्या है।

एक अन्य गाथा[1] में दिये गये नियम को बीजीय रूप से व्यक्त करने पर

$$Sp=\left\{(p-1)d+2a\right\}\frac{d}{2}$$

$$\text{एवं } S_r=\left\{(n+p-1)d+2a\right\}\frac{n-d}{2}$$

स्पष्टतः शेष श्रेणी का प्रथम पद$=a+(d\times p)$

महावीराचार्य ने मात्र बढ़ती हुई समा० श्रेणियों की ही चर्चा नहीं की है अपितु ऋणात्मक प्रचय वाली संख्या श्रेणियों को भी अपने विवेचन की परिधि में से लिया है। एतदर्थ प्रदत्त सामान्य नियम[2] को बीजीय रूप में व्यक्त करने पर

$$S=\left[\frac{n-1}{2}\,d\pm a\right]n.$$

उदाहरणार्थ, $a=14,\ d=-3,\ n=5$

$$S=\left[\frac{5-1}{2}\ (-3)+14\right]5$$
$$=[(1)-3+14]\ 5$$
$$=8\times 5=40$$

महावीराचार्य द्वारा प्रस्तुत श्रेणियों के विवेचन का वैशिष्ट्य उसकी सरसता भी है। विषय को अत्यन्त रोचक एवं नित्य प्रति के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

संकलित गति अर्थात् निरन्तर समान्तर श्रेणी के पदों में बढ़ने वाली गति अर्थात् ऐसी गति जिसमें त्वरण हो एवं ध्रुव गति अर्थात् त्वरण रहित निश्चित गति से गमन करने वाले दो व्यक्तियों के मिलने का समय ज्ञात करने हेतु निम्नलिखित नियम प्रतिपादित किया गया है। यहाँ यह भाव अन्तर्निहित है कि दोनों व्यक्तियों ने गति एक साथ, एक स्थान से एक दिशा में प्रारम्भ की थी।

अपरिवर्तनशील गति को गतियों के प्रथमपद द्वारा ह्रासित करते हैं और तब प्रचय की अर्द्धराशि द्वारा भाजित करते हैं। इस परिणामी राशि में जब 1 जोड़ते हैं तब मिलने का समय इष्ट होता है।[3]

---

[1] गणितसार संग्रह, 2/107, पृ० 33

[2] वही, 6/290, पृ० 165

[3] वही, $6/319\frac{1}{2}$, पृ० 174

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीजीय रूप में

$$t=\frac{(v-a)}{d/2}$$

यहाँ t=समय

v=स्थिर, ध्रुव गति

a=परिवर्तनशील गति का प्रथम पद या प्रारम्भ में गति

उदाहरणार्थ, कोई मनुष्य आरम्भ में 3 की गति से और उत्तरोत्तर 8 प्रचय द्वारा नियमित रूप से बढ़ाने वाली गति से जाता है। एवं दूसरे मनुष्य की निश्चित गति 21 है। यदि वे एक ही दिशा में एक स्थान से एक ही समय में प्रस्थान करें तो उनके मिलने का समय क्या होगा।[1]

$$t=\left[\frac{21-3}{8/2}\right]+1$$

$$=\frac{18}{4}+1=\frac{9}{2}+1=\frac{11}{2}$$

पुन: यदि दो व्यक्ति एक ही स्थान से एक ही समय तथा विभिन्न संकलित गतियों से प्रस्थान करें तो उनके मिलने का समय निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है।

दो प्रथम पदों का अन्तर जब उक्त दो प्रचय के अन्तर से भाजित होकर और तब 2 से गुणित होकर 1 द्वारा बढ़ाया जाये तो युगपत यात्रा करने वाले व्यक्तियों के मिलने का समय उत्पन्न होता है।[2]

माना a_1 एवं a_2 उनके प्रथम पद तथा d_1 एव d_2 प्रचय हैं तो—

$$t=\frac{a_1\sim a_2}{d_1-d_2}\times 2+1$$

उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति 4 से प्रारम्भ होने वाली एवं उत्तरोत्तर 8 प्रचय वाली संकलित गति से यात्रा करता है एवं दूसरा 10 से प्रारम्भ होकर 2 प्रचय से बढ़ने वाली गति से उसी दिशा में उसी स्थान से उसी समय प्रस्थान करता है तो उनके पुन: मिलने का समय ज्ञात करो।[3]

$$t=\frac{[4\sim 10]}{8-2}\times 2+1$$

---

[1] गणितसार संग्रह, 6/320, पृ० 174

वही, 6/322$\frac{1}{2}$, पृ० 174

[3] वही, 6/323$\frac{1}{2}$, पृ० 175

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$=\left\{\frac{6}{6}\times 2\right\}+1$$

$$=3$$

एक अन्य उदाहरण[1] में $a_1=5,\ a_2=45,\ d_1=8,\ d_2=8$

तो $$t=\frac{5\sim 45}{8-(-8)}\times 2+1$$

$$=\frac{40}{16}\times 2+1$$

$$=5+1=6$$

इसी प्रकार तरकश में मरे शरों एवं महल में लगी ईटों के संदर्भ में भी रोचक प्रश्न उपलब्ध है।

गुणोत्तर श्रेणी :

जव हम महावीराचार्य के गुणोत्तर श्रेणी संबंधी कार्य को देखते हैं तो वहां पर भी हमें वही लाघव दिखायी देता है। महावीराचार्य ने गुणघन एवं गुण संकलित निकालने हेतु निम्नलिखित नियम प्रतिपादित किया है।

गुणोत्तर श्रेणी के प्रथम पद को जब ऐसी बारंबार स्वतः से गुणित साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित करते हैं जहाँ इस गुणनफल में श्रेणी के पदों की संख्या द्वारा साधारण निष्पत्ति की बारंबारता को मापा जाता है तब गुणघन प्राप्त होता है यह गुणघन जब प्रथम पद द्वारा ह्रासित किया जाता है तथा एक कम साधारण निष्पत्ति द्वारा विभाजित किया जाता है तब गुणोत्तर श्रेणी का योग प्राप्त होता है।[3]

वीजीय रूप से

गुणघन $= a\ r^n$ यहाँ $a=$ प्रथमपद

$r=$ सार्व अन्तर या

Sn $=\dfrac{a\ r^n-a}{r-1}$ प्रचय, साधारण निष्पत्ति

$n=$ गच्छ या पदों की संख्या

गुणोत्तर श्रेणी के n पदों का योग निकालने का एक अन्य नियम भी दिया गया है जिसका वैशिष्ट्य r^n का मान निकालने की सरल विधि है। इस विधि से r^n का मान सरल गुणन तथा वर्ग करने की गति की मदद से निकाला गया है।

---

[1] गणितसार संग्रह $6/325\frac{1}{2}$, पृ० 175

[2] वही 2/93, पृ० 28

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतदर्थ यदि संख्या (n) का मान युग्म (Even) हो तो उसे आधा किया जाता है और अयुग्म (odd) होने पर उसमें से 1 घटाकर प्राप्त फल का आधा किया जाता है। यह क्रिया तब तक की जाती है जब तक शून्य न प्राप्त हो। संख्या के आधा करने पर '0' एवं 1 घटाने पर '1' क्रमशः लिखते हुए एक श्रेणी प्राप्त करते हैं। उपरांत यह श्रेणी जो '0' एवं '1' से मिलकर बनी है, क्रम से अंतिम 1 से प्रयोग में लायी जाती है। वहाँ जहाँ एक प्ररूपक होता है साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित वह एक पुनः साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित किया जाता है और जहाँ शून्य प्ररूपक होता है वहाँ भी गुणित किया जाता है ताकि वर्ग प्राप्त हो सके।

इस विधि को निम्न उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।

माना γ^{12} का मान ज्ञात करना है तो संख्या=12, 12 युग्म राशि है इसलिये इसे 2 द्वारा विभाजित करते हैं एवं 0 से प्रदर्शित करते हैं।

$\frac{12}{2}=6$ युग्म राशि है इसे भी 2 द्वारा विभाजित करके 0 से प्रदर्शित करते हैं।	0
$\frac{6}{2}=3$ अयुग्म राशि है। अतः इसे 1 द्वारा ह्रासित करते हैं तथा 1 से प्रदर्शित करते हैं।	0
$3-1=2$ युग्म राशि है अतः इसे 2 से विभाजित करते हैं तथा 0 से प्रदर्शित करते हैं।	1
$\frac{2}{2}=1$ अयुग्म राशि है अतः इसे 1 से ह्रासित करते हैं तथा शेष 0 बचने के कारण क्रिया पूर्ण होती है।	0
	1

अब निरूपक स्तम्भ में अंतिम 1 को γ द्वारा गुणा करते हैं जिसमें γ प्राप्त होता है क्योंकि इस अंतिम 1 के ऊपर 0 है। अतः γ को ऊपर की तरह प्राप्त करके वर्गित कर देते हैं जिससे γ^2 मान प्राप्त होता है चूँकि इस 0 के ऊपर 1 है अतः γ^2 में γ का गुणा करते हैं जो γ^3 देता है। पुनः इसके ऊपर 0 है अतः γ^3 को वर्गित करने पर γ^6 मिलता है। पुनः इसके ऊपर 0 है अतः γ^6 को वर्गित करने पर मूल γ^{12} प्राप्त होता है।

इस प्रकार कितनी भी बड़ी घात का मान ज्ञात कर सकते हैं।

पुनः संख्यात्मक उदाहरण के माध्यम से भी इसे समझाया गया है। आचार्य ने इसी शृंखला में गुणोत्तर श्रेणी के पदों की संख्या साधारण-निष्पत्ति एवं प्रथम पद निकालने के सूत्र भी दिये गये हैं।

आचार्य ने ऐसी गुणोत्तर श्रेणी की भी चर्चा की है जिसको किसी गुणोत्तर श्रेणी के पदों में किसी ज्ञात राशि को किसी निर्दिष्ट रीति से जोड़ या घटा कर प्राप्त किया गया है।

माना कोई गुणोत्तर श्रेणी

$s=a+a\,r+a\,r^2+a\,r^3+\cdots\cdots$ n पदों तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा नई गुणोत्तर श्रेणी

$$S^1 = a + (ar \pm m) + \{(ar \pm m)\ r \pm m\} + \{(ar \pm m)\ r \pm m\}\ r \pm m\}$$

2+⋯n पदों तक

तो आचार्य के नियमानुसार

$$S^1 = \frac{\pm\left(\frac{S}{a} - n\right)m}{r-1} + S$$

इस सूत्र की सत्यता को आधुनिक गणनाओं से भी परखा जा सकता है।

$$S^1 = a + (ar+m) + \{(ar+m)r+m\} + [\{(ar+m)r+m\}r+m] + \cdots \text{पदों तक}$$

$$= [a + ar + ar^2 + ar^3 + \cdots\cdots\cdots n \text{ पदों तक}]$$
$$+ m[1 + r + r^2 + \cdots\cdots\cdots n-1 \text{ पदों तक}]$$
$$+ m[1 + r + r^2 + \ldots\ldots\ldots n-2 \text{ पदों तक}]$$
$$+ \ldots\ldots\ldots + m$$

$$= \frac{a(r^n-1)}{r-1} + \frac{m(r^{n-1}-1)}{r-1} + \frac{m(r^{n-2}-1)}{r-1} + \ldots + m$$

$$= S + \frac{m}{r-1}\left[(r^{n-1}-1) + (r^{n-2}-1) + \ldots r-1\right]$$

$$= S + \frac{m}{r-1}\left[(r + r^2 + r^3 + \ldots r^{n-1}) - (1+1+1+1\ldots\ldots n-1 \text{ पदों तक})\right]$$

$$= S + \frac{m}{r-1}\left[r(1 + r + r^2 + \quad + \gamma^{n-2}) - (n-1)\right]$$

$$= S + \frac{m}{r-1}\left[\frac{r\ (r^{n-1}-1)}{r-1} - (n-1)\right]$$

$$= S + \frac{m}{r-1}\left[\frac{(r^n - r)}{r-1} - n + 1\right]$$

$$= S + \frac{m}{r-1}\left[\frac{r^n - 1}{r-1} - \frac{(r-1)}{r-1} - n + 1\right]$$

$$= S + \frac{m}{r-1}\left[\frac{S}{a} - 1 - n + 1\right]$$

$$= S + \frac{m}{r-1}\left[\frac{S}{a} - n\right]$$

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस सूत्र का व्यापकीकरण करते हुए निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$S' = S \pm \frac{\left[\frac{S}{a} - n\right] m}{r - 1}$$

महावीराचार्य ने समान्तर एवं गुणोत्तर श्रेणियों के अतिरिक्त विविध श्रेणियों का भी उपचार किया है।

1 से लेकर n तक की प्राकृत संख्याओं के वर्गों का योग निकालने का नियम प्रतिपादित करते हुए आपने लिखा कि दी गई संख्या को एक द्वारा बढ़ाते हैं और तव वर्गित करते हैं। यह वर्गित राशि 2 से गुणित की जाती है और तब एक द्वारा बढ़ाई गई दत्त राशि द्वारा ह्रासित की जाती है। इस प्रकार शेष राशि को दत्त संख्या की आधी राशि द्वारा गुणित करते हैं। यह परिणाम उस योग के तुल्य होता है जो दी गई संख्या के वर्ग, दी गई संख्या के धन और दी गई संख्या तक की प्राकृत संख्याओं को जोड़ने पर प्राप्त होता है। इसे 3 से भाजित करने पर अपेक्षित योग प्राप्त होता है।

वीजीय रूप से $1^2 + 2^2 + 3^2 + \cdots\cdots + n^2 = \Sigma n^2$

$$= \frac{1}{3}\left[2(n+1)^2 - (n+1)\right]\frac{n}{2}$$

$$= \frac{1}{3}\left[2(n^2 + 2n + 1) - n - 1\right]\frac{n}{2}$$

$$= \frac{1}{3}\left[2n^2 + 4n + 2 - n - 1\right]\frac{n}{2}$$

$$= \frac{1}{3}\left[2n^2 + 3n + 1\right]\frac{n}{2}$$

$$= \frac{1}{3}\left[n^3 + \frac{3}{2}n^2 + \frac{n}{2}\right]$$

$$= \frac{1}{3}\left[n^3 + n^2 + \frac{1}{2}n^2 + \frac{n}{2}\right]$$

$$= \frac{1}{3}\left[n^2(n+1) + \frac{1}{2}n(n+1)\right]$$

$$= \frac{1}{3}\left[(n+1)(n^2 + \frac{1}{2}n)\right]$$

$$= \frac{1}{3}\left[(n+1)n(n + \frac{1}{2})\right]$$

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$=\frac{1}{3\times 2}(n\quad 1)n(2n+1)$$

$$=\frac{n\ (n+1)\ (2n+1)}{6}$$

पुन: $\Sigma n^2 = [\frac{1}{3}\ [\Sigma n + n^2 + n^3]$ यह नियम भी इसी गाथा में दिया है। उपरान्त समान्तर श्रेणी के n पदों के वर्गों का योग निकालने का नियम दिया है।

माना समान्तर श्रेणी

a, a + d, a + 2d, a + 3d···· a + (n—1)d. है तो आधुनिक नियम से

$$\Sigma[a+(n-1)d]^2 = \Sigma[(a-d)+nd]^2$$

$$=\Sigma\{(a-d)^2+n^2d^2+2(a-d)nd\}$$

$$=n(a-d)^2+d^2\Sigma n^2+2(a-d)d\Sigma n$$

$$=n(a-d)^2+d^2\frac{n(n+1)\ (2n+1)}{6}$$

$$+2\,\frac{(a-d)dn(n+1)}{2}$$

$$=n(a^2+d^2-2ad)+\frac{d^2}{6}\,n(2n^2+1+3n)$$

$$+(ad-d)^2n(n+1]$$

$$=n\Big[(a^2+d^2-2ad)+(2n^2+1+3n)\frac{d^2}{6}$$

$$+(n+1)\ \ (ad-d^2)$$

$$n=\Big[1+\frac{2n^2+1+3n}{6}-(n+1)\ \Big]$$

$$(-2+n+1)ad+a^2\ \Big]$$

$$=n\Big[\frac{(2n^2-3n+1)d^2}{6}+(n-1)ad+a^2\ \Big]$$

$$=n\Big[\frac{(2n-1)\ (n-1)d^2}{6}+(n-1)ad+a^2\ \Big]$$

$$=n\Big[\Big\{\frac{(2n-1)d^2}{6}+a\Big\}d\ (n-1)+a^2\Big]$$

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावीराचार्य का नियम[1] बीजीय रूप में लिखने पर उपर्युक्त सूत्र उत्पन्न करता है।

आपने प्राकृतिक संख्याओं के घनों के योग हेतु भी नियम[2] प्रतिपादित किया है। किन्तु Σn हेतु कोई नियम नहीं दिया है। यद्यपि इसका प्रयोग है।

$$\Sigma n^3 = \left[\frac{n(n+1)}{2}\right]^2$$

महावीराचार्य ने अनेक ऐसे नियम प्रतिपादित किये हैं जिस रूप में आधुनिक गणित में नहीं मिलते। यथा

किसी समान्तर श्रेणी के n पदों के घनों का योगफल[3]

माना $Sn = \Sigma\{a+(n-1)d\}^3$

$= a^3 + (a+d)^3 + (a+2d)^3 + \cdots\cdots [a+(n-1)d]^3$

$= S^2d + S.a(a-d)$ जब $a > d$

$= S^2d - Sa(a-d)$ जब $a < d$

यहाँ $S = a+(n-1)d$

$a =$ प्रथम पद, $d =$ सार्व अन्तर

ऐसी समान्तर श्रेणी की दी हुई संख्या के पदों का योग निकालने के लिए भी नियम[4] प्रतिपादित किया गया है जहाँ पद उत्तरोत्तर 1 से लेकर निर्दिष्ट सीमा तक प्राकृत संख्याओं के योग हो तथा ये दी हुई सीमित संख्यायें समान्तर श्रेणी में हो। इस नियम को बीजीय रूप में व्यक्त करने पर—

माना श्रेणी

$S = 1 + (1+2) + (1+2+3) + (1+2+3+4) + \cdots + \Sigma n.$

व्यापक रूप में

$S = Sa + S(a+d) + S(a+2d) + S(a+3d) + \cdots S(a+(n-1)d)$

$$= \frac{n}{2}\left[\left\{\frac{(2n-1)d^2}{6} + \frac{d}{2} + ad\right\} \times (n-1) + a(a+1)\right]$$

इसी प्रकार कतिपय अन्य नियम भी प्राप्त होते हैं। इस प्रकरण में विवेचित सामग्री से महावीराचार्य के एतद विषयक ज्ञान की गहनता, सहजता एवं सरसता स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

---

[1] गणितसार संग्रह 6/298, पृ० 167

[2] वही, 6/301, पृ० 168

[3] वही, 6/303, पृ० 169

[4] वही, 6/305, 6/305½, पृ० 169

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेत्रगणित—ज्यामितीय आकृतियों के क्षेत्रफल

क्षेत्रगणित शूल्वकाल से ही भारतीयों की रुचि का विषय रहा है। लोक संरचना के विवेचन में व्यापक रूप से प्रयुक्त होने के कारण जैन ग्रन्थों में भी क्षेत्र-गणित विषयक सामग्री विपुल परिणाम में उपलब्ध है। गणितसार संग्रह का सातवाँ अध्याय पूर्णत: क्षेत्रगणित को समर्पित है। प्रस्तुत अध्याय में हम विविध ज्यामितीय आकृतियों एवं उनके क्षेत्रफल ज्ञात करने की विधियों का विवेचन करेंगे।

महावीराचार्य के गणितसार संग्रह में निम्नलिखित आकृतियों की चर्चा है—

त्रिभुज[1]—1. समत्रिभुज (समत्रिबाहुत्रिभुज)।

2. द्विसम त्रिभुज (समद्विबाहु त्रिभुज)।

3. विषम त्रिभुज (विषम बाहु त्रिभुज)।

चतुर्भुज[2]—1. समचतुरस्र (वर्ग)।

2. द्विद्वि सम चतुरस्र (आयत)।

3. द्विसम चतुरस्र (समलम्ब चतुर्भुज, असमान्तर भुजायें समान)।

4. त्रिसम चतुरस्र (समलम्ब चतुर्भुज जिसकी 3 भुजायें समान)।

5. विषम चतुरस्र (साधारण चतुर्भुज)।

घेरेदार आकृतियां[3]—1. समवृत्त (वृत्त)।

2. अर्द्धवृत्त।

3. आयत वृत्त (दीर्घ वृत्त)।

4. कम्बुकावृत्त (शंखाकार क्षेत्र)।

5. निम्नावृत्त (अवतल वृत्तीय)।

6. उन्नतावृत्त (उत्तलवृत्तीय)।

7. बहिश्चक्रवाल (वृत्ताकार वलय)।

8. अन्त: चक्रवाल।

इसके अतिरिक्त महावीराचार्य ने निम्न आकृतियों[4] की भारतीय गणितज्ञों में सर्वप्रथम चर्चा की है।

1. यवाकार क्षेत्र।
2. मुरजाकार क्षेत्र।
3. पणवाकार क्षेत्र।
4. वज्राकार क्षेत्र।

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/5, पृ० 181

[2] वही, 7/5, पृ० 181

[3] वही, 7/6, पृ० 181

[4] वही, 7/32–37, पृ० 188

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5. उभयनिषेध क्षेत्र।
6. एकनिषेध क्षेत्र।
7. संस्पर्शी तीन और चार वृत्तों द्वारा सीमित क्षेत्र।

निम्न आकृतियों का भी उल्लेख मिलता है।

8. हृतदन्त क्षेत्र
9. षट्भुज क्षेत्र

त्रिभुज—

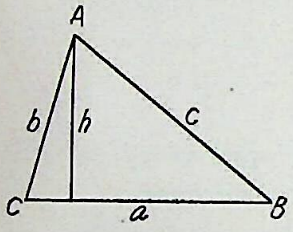

त्रिभुज का सन्निकट क्षे०[1]

$= \frac{1}{2}$ आधार $\times$ (शेष दो भुजाओं का योग)

$= \frac{1}{2} (a) \times (b+c)$

त्रिभुज का सूक्ष्म क्षे०[2]

$= \frac{1}{2} \times$ आधार $\times$ लम्ब

$= \frac{1}{2} \times a \times h$

त्रिभुज का सूक्ष्म क्षे०[3] $= \sqrt{s(s-a)(s-b)(s-c)}$

यहाँ $s =$ अर्द्धपरिमिति $= \frac{a+b+c}{2}$

जहाँ a, b, c = त्रिभुज की तीनों भुजायें

त्रिभुज की अवधायें निकालने का नियम[4]

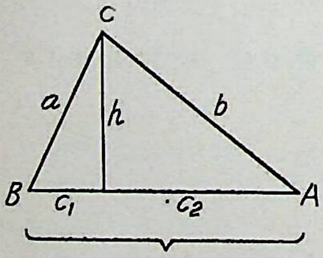

$$C_1 = \frac{1}{2} \frac{(C+a^2-b^2)}{C}$$

$$C_2 = \frac{1}{2} \frac{(C-a^2-b^2)}{C}$$

$$h = \sqrt{a^2 - C^2}$$
$$= \sqrt{b^2 - C_2^2}$$

---

[1] गणितसार संग्रह 7/7, यह फल अशुद्ध है। पृ० 183

[2] वही, 7/50, पृ० 193

[3] वही, 7/50, पृ० 193

[4] वही, 7/ 49, पृ० 192

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्भुज—महावीराचार्य ने चतुर्भज के नियमों के प्रतिपादन में किंचित् भूलें की है।

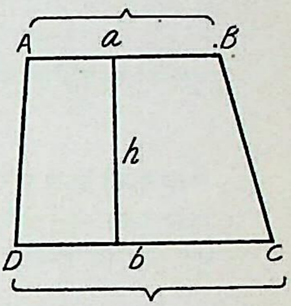

चतुर्भुज का स्थूल क्षे०

$$= \frac{a+c}{2} \times \frac{b+d}{2}$$

चतुर्भुज सूक्ष्म क्षे० $= \frac{a+c}{2} \times h$

यहाँ h ऊँचाई या a, b के मध्य लम्ब दूरी है। स्पष्टतः यह नियम विषम चतुरस्र हेतु सत्य नहीं है। चतुर्भुज का सूक्ष्म क्षे० माना A है। तो

$$A = \sqrt{(s-a)\,(s-b)\,(s-c)\,(s-d)}$$

यहाँ s = अर्द्धपरिमिति $= \frac{a+b+c+d}{2}$

a, b, c, d = चतुर्भज की भुजायें हैं।

यह नियम मात्र चक्रीय चर्तुभुजों हेतु सत्य है किन्तु महावीराचार्य ने इस सीमा का उल्लेख नहीं किया। ब्रह्मगुप्त एवं श्रीधर ने भी यही त्रुटि की है। सामान्य नियम निम्नवत् है।

चर्तुभुज का क्षे० $= \sqrt{(s-a)\,(s-b)\,(s-c)\,(s-d) - abcd\cos^2\alpha}$

यहाँ α = चतुरस्र के आमने सामने के कोणों के योग का आधा

चतुर्भज का कर्ण[1] $= \sqrt{\frac{(ac+bd)\,(ab+cd)}{(ad+bc)}}$

एवं $= \sqrt{\frac{(ac+bd)\,(ad+bd)}{(ab+cd)}}$

समवृत्त (वृत्त) एवं अर्द्धवृत्त—वृत्त के सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु π का मान है। यद्यपि यह सत्य है कि 'π' चिन्ह का प्रयोग उस समय नहीं होता था तथापि इस अनुपात के मान का प्रचलन प्राचीन काल से है। जैन परम्परा में π का मान $\sqrt{10}$ लिया गया है एवं उसी का अनुकरण महावीराचार्य ने किया। स्थूल रूप से π का मान 3 भी लिया है अतः वृत्त की स्थूल

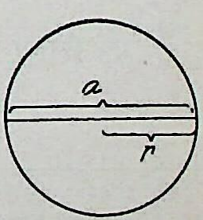

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/5, पृ० 194। यह नियम भी मात्र चक्रीय चतुर्भुजों हेतु सत्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिधि[1] $= 3 \times$ व्यास

$= 3 \times a = 3.2r$

वृत्त का स्थूल क्षेत्रफल[2] $= 3 \times \left(\frac{\text{व्यास}}{2}\right)^2$

$= \frac{3}{4}a^2 = 3.\gamma^2$

अर्द्धवृत्त की स्थूल परिधि[2] $= \frac{3}{4}a = 3 \cdot r$

अर्द्धवृत्त का स्थूल क्षेत्रफल[3] $= \frac{3}{8}a^2 = \frac{3}{2}r^2$

वृत्त की सूक्ष्म परिधि[4] $= \pi.a = 2\pi.r$

वृत्त का सूक्ष्म क्षेत्रफल[5] $= \pi.\left(\frac{(a)}{(2)}\right)^2$

$= \pi \frac{a^2}{4} = 2\ \pi.r^2$

अर्द्धवृत्त की सूक्ष्म परिधि[6] $= \pi.\frac{a}{2} = \pi.r$

" " क्षेत्रफल[7] $= \pi \frac{a^2}{8} = \frac{\pi}{2}.r^2$

आयतवृत्त—इसे वर्तमान में दीर्घवृत्त (Ellipse) कहा जाता है। गणितसार संग्रह में इस आकृति की परिधि एवं क्षेत्रफल निकालने के लिए सूत्र उपलब्ध है। यद्यपि इन सूत्रों को आयात वृत्त हेतु निर्दिष्ट किया गया है किन्तु इसे दीर्घवृत्त के समतुल्य (Oval like round and symmetrical plane figure) किसी भी आकृति हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है।

यदि दीर्घवृत्त का आयाम (लम्बाई) (अग्रांकित चित्र में)

$= AB = L$

एवं दीर्घवृत्त का व्यास (चौड़ाई)

$= CD = B$

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/19, पृ० 185

[2] वही, 7/19, पृ० 185

[3] वही, 7/19, पृ०–185

[4] वही, 7/60, पृ० 195

[5] वही, 7/60, पृ० 195

[6] वही 7/60, पृ० 195

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो परिधि[1] $= 2\left(L + \frac{B}{2}\right)$

एवं क्षेत्रफल[2] $= \frac{B}{9} \times P = \frac{B}{2} \times 2\left(L + \frac{B}{2}\right)$

$$= \frac{B}{2}\left(L + \frac{B}{2}\right)$$

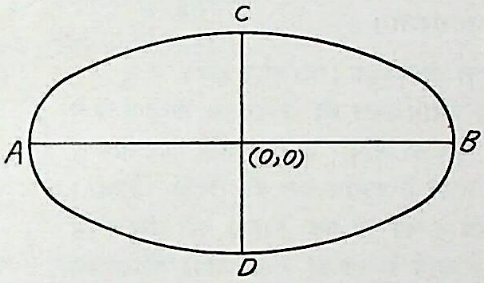

चित्र 5.

सूक्ष्म मान हेतु दिये गये नियमानुसार

परिधि$_z$ $= (4L^2 + 6B^2)^{1/2}$

यदि L $= 2$ a, B$= 2$ b,   परिधि=P, क्षेत्रफल=A

तो P $= 2\ [2a + b]$

A $= b\ [2a + b]$

तथा सूक्ष्म मान हेतु

P $= 2\ [4a^2 + 6b^2]^{1/2}$

एवं A $= b\ [4a^2 + 6b^2]^{1/2}$

उपरोक्त मानों को सूक्ष्म मान कहना उपयुक्त नहीं है। ये मात्र स्थूल मान देते हैं। क्योंकि सूक्ष्म मान निम्नलिखित सूत्र से दिये जाते हैं।[2]

$$P = 4\int_0^{\pi/4} (a^2 \sin^2\phi + b^2 \cos^2\phi)^{1/2}\, d\phi$$

$$A = \pi . a\, b$$

---

[1] गणितसार संग्रह 7/21, पृ० 185

[2] वही 7/21 पृ० 185

[3] वही 7/63, पृ० 196

[4] वही 7/63, पृ० 196

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन सूत्रों के उपरान्त दिये गये संख्यात्मक उदाहरण में L=36 एवं B=12 दिया गया है तथा P एवं A के मान पूछे गये हैं।

	स्थूल मान के सूत्र से π	सूक्ष्म मान के सूत्र से	शुद्ध मान
P	84	$12\sqrt{42} \approx 78$	≈ 81
A	252	$36\sqrt{42} \approx 233$	108π

उपरोक्त तालिका से इन सूत्रों द्वारा परिकल्पित मानों की सत्यता का अनुमान लगाया जा सकता।

कम्बुकावृत्त या कम्बुक (शंखाकार क्षेत्र)

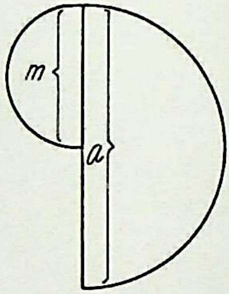

कम्बुक के समान वृत्त की अधिकतम चौड़ाई में से कम्बुक के समान मुख का आधा घटाओ और फिर तीन से गुणा करो। ऐसा करने से कम्बुक वृत्त की परिधि मिलेगी। इस परिधि के आधे के वर्ग का एक तिहाई लो और इसमें मुख के आयाम के आधे के वर्ग का 3/4 जोड़ो तो कम्बुक वृत्त का क्षेत्रफल मिलेगा।

माना कम्बुक वृत्त का व्यास=a एवं मुख का व्यास =m तो परिधि[1] $P=3\left(a-\frac{m}{2}\right)$

क्षेत्रफल[2] $A=\left[\frac{3}{2}\left(a-\frac{m}{2}\right)\right]^2\times\frac{1}{3}+\left(\frac{m}{2}\right)^2\times\frac{3}{4}$

सूक्ष्मान हेतु

$$P^3=\sqrt{10}\left[a-\frac{m}{2}\right]$$

$$A^4=\left[\left\{\left(a-\frac{m}{2}\right)\times\frac{1}{2}\right\}^2+\frac{M}{4}\right]^2\times\sqrt{10}$$

निम्नावृत एवं उन्नतावृत्त (Concave & Convex Circular Surface)

इस प्रकार के गोलीय खण्डों के पृष्ठ क्षेत्रफल ज्ञात करने हेतु महावीराचार्य ने निम्न नियम प्रतिपादन किया—

---

[1] गणितसार संग्रह 7/23, पृ० 186

[2] वही 7/23, पृ० 186

[3] वही 7/65–66, पृ० 196

[4] वही 7/65–66, पृ० 196

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिधेश्च चतुर्भागो विष्कम्भ गुण: गणितफलम् ।[1]

अर्थात् परिधि के चतुर्थ भाग में विष्कम्भ का गुणा करने पर इच्छित फल प्राप्त होता है।

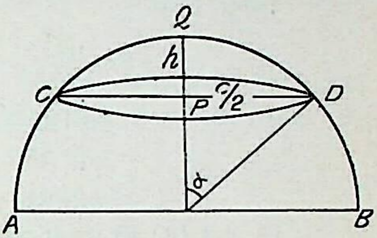

यदि गोलीय खण्ड C P D Q के गोलीय आधार की परिधि P हो एवं व्यास d हो तो पृष्ठ क्षेत्रफल (वक्रपृष्ठ)।

$$S_1 = \frac{P}{4} \times d = \pi \frac{d}{4} \times d \quad (\text{क्योंकि } P = \pi d)$$

$$= \frac{\pi d^2}{4} \qquad (1)$$

यदि गोलीय खंड की ऊँचाई PQ=h, OD=R
तो आधुनिक ठोस ज्यामिति से पृष्ठ क्षेत्रफल

$$S = 2\pi R \text{ यहाँ } R \text{ मूल गोले की त्रिज्या है।} \qquad (2)$$

$$= 2\pi R\,(1 - \cos\alpha)$$

क्योंकि Δ PDO में $\cos\alpha = \frac{PO}{R}$

अत: $PO = R\cos\alpha$

$OQ = R$

अत: $PQ = h = R - R\cos\alpha$

$$= R\,(1 - \cos\alpha)$$

$$= 2\pi R^2 \left[1 - \left\{\frac{1}{1} - \frac{\alpha^2}{2\,!} + \frac{\alpha^4}{4\,!} \cdots\cdots \right\}\right]$$

$$= 2\pi R^2 \left[1 - 1 + \frac{\alpha^2}{2\,!} - \frac{\alpha^4}{4\,!} + \cdots\cdots \right]$$

$$= 2\pi R^2 \left[\frac{\alpha^2}{2\,!} - \frac{\alpha^4}{4\,!} + \cdots\cdots \right]$$

$$= \pi R^2 \alpha^2 - \frac{\pi R^2 \alpha^4}{12} \qquad (3)$$

---

[1] वही 7/25-I, पृ० 186

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु (1) से

$$S=\frac{\pi d^2}{4}$$
$$=\pi[R^2-(R-h)^2]$$
$$=\pi[R^2-R^2-h^2+2Rh]$$
$$=2\pi Rh-\pi h^2 \qquad (4)$$

(2 एवं (4) की तुलना करने पर त्रुटि का परिमाण

$$E_1=\pi h^2=\pi R^2\alpha^4$$

स्पष्टतः महावीराचार्य का सूत्र सत्य नहीं है उन्होंने गोलीय पृष्ठ के पृष्ठ क्षेत्रफल का सूत्र वृत्त के क्षेत्रफल के सूत्र के समान प्रतिपादित कर दिया है।

गुप्ता के इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किया है।[1] उनके अनुसार मूल गाथा में आये विष्कम्भ का अर्थ यहाँ वक्रीय चौड़ाई (curvilinear breadth) लेना चाहिये। इस प्रकार का अर्थ ग्रहण करने से त्रुटि का परिमाण काफी घट जाता है। गुप्ता द्वारा, प्रस्तुत सुझावानुसार—

$$S_2=\frac{P}{4} \text{ (यहाँ S=चाप C Q P)}$$
$$=\frac{\pi d}{4}\times S$$
$$=\pi\frac{d}{2}\times\frac{S}{2}$$
$$=\pi.R\sin\alpha.R\alpha \left[\text{चूंकि } \sin\alpha=\frac{d/2}{R}\right.$$
$$=\pi R^2\alpha.\sin\alpha \qquad \left.2d=S/R\right]$$
$$=\pi R^2\alpha\left[\alpha-\frac{\alpha^3}{3!}+\frac{\alpha^5}{5!}\ldots\ldots\right]$$
$$=\pi R^2\alpha^2-\frac{\pi\pi^2\alpha^4}{6} \qquad (2)$$

(3) एवं (5) की तुलना करने पर त्रुटि का परिमाण

$$E_2=\frac{\pi R^2\alpha^4}{12}$$

E_1 एवं E_2 क्रमशः महावीराचार्य एवं गुप्ता द्वारा दी गयी महावीराचार्य के सूत्र की व्याख्याओं द्वारा संयोजित सूत्रों एवं मूल सूत्र के अन्तर को व्यक्त करती है

---

[1] देखें, सं० 26 II, पृ० 22

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

E_1 का परिमाण E_2 से 3 गुना अधिक है। अतः गुप्ता की व्याख्या करने पर हम अधिक तर्कसंगत एवं शुद्ध सूत्र प्राप्त करते हैं।

गुप्ता की व्याख्या स्वीकार करने के पीछे एक अत्यन्त ठोस कारण संगत गाथा के बाद दिये गये संख्यात्मक उदाहरण हैं। उदाहरणों में पृष्ठ क्षेत्रफल ज्ञात करने हेतु

(1) विष्कम्भ $=27$, परिधि $=56$

(2) विष्कम्भ $=15$, परिधि $=36$

दिया है। यदि विष्कम्भ का अर्थ सीधे व्यास हो तो प्रथम तो इसको देने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि विष्कम्भ $=\frac{\text{परिधि}}{\pi}$ एवं यदि दिया भी था तो प्रदत्त संख्यात्मक उदाहरण में विष्कम्भ एवं परिधि में कोई संगति नहीं बैठती है। π का न्यूनतम मान 3 स्वीकार करने पर 27 विष्कम्भ के संगत परिधि $=81$ होनी चाहिये। स्पष्टतः विष्कम्भ का अर्थ व्यास से बड़ी राशि वक्रीय चौड़ाई (curvilinear breadth) उपयुक्त ही है।

बहिश्चक्रवाल एवं अन्तश्चवाल

महावीराचार्य ने इन संज्ञाओं के अन्तर्गत वलयाकार क्षेत्रों का क्षेत्रफल ज्ञात करने के सूत्र दिये हैं। माना मूल वृत्त का व्यास $=b$ है एवं कंकड़ (वलय) की चौड़ाई r है तो बहिश्चक्रवाल का क्षेत्रफल[1] $=3\ (b+r)\ r$

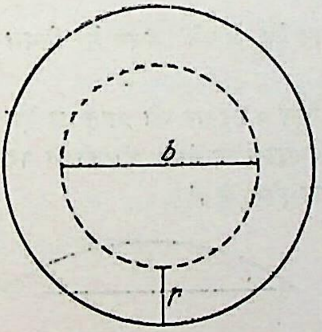

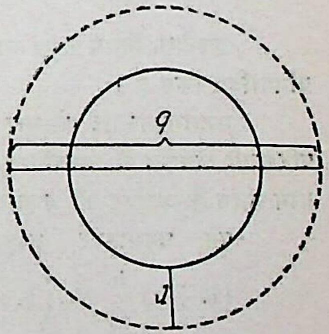

अथवा सूक्ष्म क्षेत्रफल[2] $=\sqrt{10}\ (b+r)\ r$

पुनः अन्तश्चक्रबाल हेतु माना मूल वृत्त का व्यास $=b$

एवं उसके अन्दर खींची गयी वलय की चौड़ाई $=r$

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/28, पृ० 187

[2] वही, $7/67\frac{1}{2}$, पृ० 197

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो अन्तश्चक्रवाल का क्षेत्रफल[1] $= 3\ (b - r).r$

सूक्ष्म क्षेत्रफल[2] $= \sqrt{10}\ (b - r).r$

यवाकार, मुरजाकार, पणवाकार तथा वज्राकार

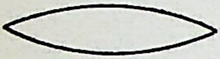

यवाकार

मुरजाकार

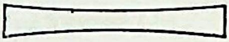

पणवाकार

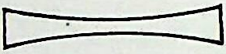

वज्राकार

इस प्रकार की चारों आकृतियों हेतु महावीराचार्य का सामान्य नियम निम्नवत् है—

अन्त एवं मध्य माप के योग की अर्द्धराशि को आयाम से गुणा करने पर क्षेत्रफल प्राप्त होता है।[3]

यदि मुख की चौड़ाई $= a$

मध्य की चौड़ाई $= b$

पूरी लम्बाई, आयाम $= c$

तो क्षेत्रफल $= \frac{(a+b)}{2} \times c$

उपरोक्त नियम स्थूल मान हेतु है। सूक्ष्म मान हेतु आपने अलग से नियम प्रतिपादित किये हैं।

महत्तम लम्बाई को मुख की चौड़ाई द्वारा गुणित करने पर जो प्राप्त हो ऐसे परिणामी क्षेत्रफल में सम्बन्धित धनुषाकृतियों के क्षेत्रफलों के मान को जोड़ने पर योग मृदंग के आकार की आकृति के क्षेत्रफल का माप होता है।[4]

पुनः धनुषाकार आकृति का क्षेत्रफल

$(K+h)\frac{h}{2}$ या, $\left(K \times \frac{h}{4}\right)\sqrt{10}$

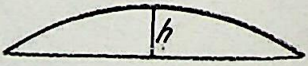

यहाँ ज्या $= K$

वाण $= h$

[1] गणितसार संग्रह, 7/28, पृ० 187

[2] वही, 7/67½, पृ० 197

[3] वही, 7/32, पृ० 188

[4] वही, 7/76½, पृ० 200

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह नियम जैन धर्मानुयायियों की किसी आकृति के खण्डों का क्षेत्रफल ज्ञात करने के उपरान्त उनके योग से पूर्ण आकृति का क्षेत्रफल ज्ञात करने की प्राचीन विधि पर आधारित है।

उभयनिषेध एवं एकनिषेध क्षेत्र—

किसी चतुर्भुज को उसके दोनों विकर्णों द्वारा चार त्रिभुजों में बाँट देने पर और फिर दो सम्मुख त्रिभुजों को हटाने पर प्राप्त आकृति उभयनिषेध क्षेत्र कहलाती है। यदि केवल एक त्रिभुज को हटाये तो एक निषेध आकृति मिलती है।

माना उभयनिषेध/एकनिषेध की

लम्वाई $= a$

एवं उभयनिषेध/एकनिषेध की

चौड़ाई $= b$

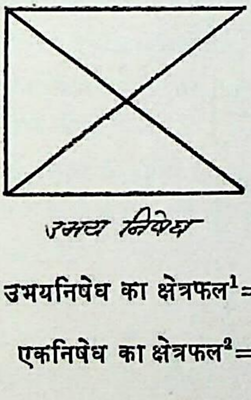

उभय निषेध

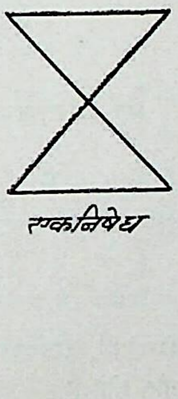

एकनिषेध

तो उभयनिषेध का क्षेत्रफल[1] $= ab - \frac{1}{2} ab$

एकनिषेध का क्षेत्रफल[2] $= ab - \frac{ab}{4}$

संस्पर्शी वृत्तों द्वारा सीमित क्षेत्र—

यदि अर्द्धपरिमिति S और भुजाओं की संख्या n हो तो वृत्तों द्वारा सीमित क्षेत्र का क्षेत्रफल[3]

$$= \frac{1}{4}\left[\frac{S^2}{3} \times \frac{n-1}{n}\right]$$

उदाहरणार्थ यदि 9 व्यास वाले 4 संस्पर्शी वृत्तों से सीमित एक चतुर्भुज बनाते हैं तो

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/37, पृ० 189

[2] वही, 7/37, पृ० 189

[3] वही, 7/39, पृ० 189

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

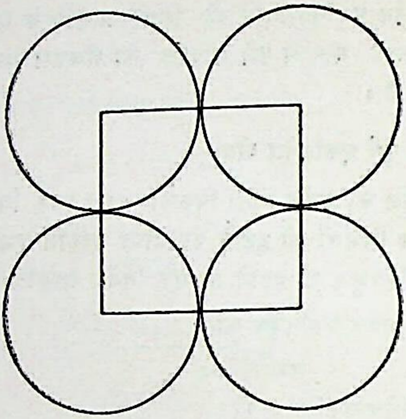

चार संस्पर्शी वृत्त

$$S = \frac{9 \times 4}{2} = \frac{36}{2} = 18$$

$$\text{अतः क्षेत्रफल} = \left[\frac{18^2}{3} \times \frac{4-1}{4}\right]$$

$$= \frac{1}{4}\left[\frac{18^2}{3} \times \frac{3}{4}\right]$$

$$= \frac{18^2}{16} = \frac{324}{16} = \frac{81}{4}$$

महावीराचार्य, हस्तदन्त क्षेत्र का क्षेत्रफल त्रिभुज के क्षेत्रफल के आधार पर ज्ञात करते प्रतीत होते हैं।

समषट्भुज हेतु आपने निम्नलिखित सूत्र दिये हैं—

यदि समषट्भुज की भुजा $= a$ तो

$$\text{लम्ब} = 2a$$

$$\text{कर्ण} = \sqrt{3a}$$

$$\text{क्षेत्रफल} = \sqrt{3a^2}$$

आपने वृत्त के परिगत एवं अन्तर्गत चतुर्भुजों की भी चर्चा की है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आपने पूर्ववर्ती भारतीय गणितज्ञों द्वारा चर्चित सभी महत्वपूर्ण आकृतियों की चर्चा के साथ ही, अनेक नवीन आकृतियों की भी चर्चा की है। उन्होंने इन आकृतियों के क्षेत्रफल आदि ज्ञात करने के सूत्र प्रतिपादित किये हैं। इस क्षेत्र में इनका लाघव प्रशंसनीय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीजगणितीय समीकरणों के हल

बीजगणित में जैनाचार्यों की प्रारम्भ से ही महती रुचि रही है। श्वेताम्बर परम्परा के आगम ग्रन्थों में आगत यावत्-तावत का सम्बन्ध एक घातीय एक अज्ञात राशि के समीकरण से जोड़ा जाता है। धवला टीका में विषयों के स्पष्टीकरण की प्रक्रिया में जिस सहजता के साथ बीजगणितीय समीकरणों का उपयोग किया गया है उससे स्पष्ट होता है कि इन ग्रन्थों के अध्येता बीजगणितीय समीकरणों को हल करने में पूर्ण एवं सहज रूप में सक्षम थे।

महावीराचार्य के पूर्ववर्ती आचार्य श्रीधर (8वीं० श०) का बीजगणित विषयक ग्रन्थ वर्तमान में अनुपलब्ध है अन्यथा वह ग्रन्थ भी जैन परम्परा को ग्रन्थों में, बीजगणित विषयक विशिष्ट ग्रन्थ होता। महावीराचार्य ने भिन्नों पर इबारती प्रश्नों के हल करने के क्रम में निम्न प्रकार के समीकरणों का विवरण दिया है—

1. **एक अज्ञात राशि के एक घातीय समीकरण**—आगम ग्रन्थों से महावीराचार्य पर्यन्त अनेक ग्रन्थों में आगत इस प्रकार के समीकरणों की यूरोपीय गणितज्ञ Rule of False Position के नाम से चर्चा करते हैं।

आचार्य महावीर ने इस प्रकार अर्थात् $ax+bx=c$ के समीकरणों के हल का निम्न नियम दिया है—

अज्ञात राशि के स्थान पर एक रखकर प्रश्न के अनुसार फल ज्ञात करो एवं फिर प्राप्त फल से दिये हुए फल को भाग दो। इस प्रकार प्राप्त भजनफल ही अज्ञात राशि का मान होगा।[1]

उपर्युक्त नियम को एतद्विषयक साधित उदाहरण से समझा जा सकता है। "यदि किसी राशि $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{5}$ और $\frac{1}{6}$ का $\frac{3}{4}$ का $\frac{1}{5}$ का योग $\frac{1}{2}$ है तो बतलाओ वह अज्ञात राशि क्या है।"

माना अज्ञात राशि 1 है।

$$1 \text{ का } \frac{1}{8}=\frac{1}{8}$$

$$1 \text{ का } \frac{1}{3} \text{ का } \frac{1}{4}=\frac{1}{12}$$

$$1 \text{ का } \frac{1}{2} \text{ का } \frac{1}{5}=\frac{1}{10}$$

$$1 \text{ का } \frac{1}{6} \text{ का } \frac{3}{4} \text{ का } \frac{1}{5}=\frac{1}{40}$$

---

[1] गणितसार संग्रह 3/107, पृ० 60

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनका सम्मिलित योग $=\frac{1}{8}+\frac{1}{12}+\frac{1}{10}+\frac{1}{40}$

$=\frac{15+10+12+3}{120}$

$=\frac{40}{120}=\frac{1}{3}$ (प्राप्त फल)

प्रदत्त फल $=\frac{1}{2}$

अतः अज्ञात राशि $=\frac{1/2}{1/3}=\frac{3}{2}$

प्रकीर्णक व्यवहार में भिन्नों "पर विविध प्रश्नों के अन्तर्गत प्रारम्भ में ही एक अत्यन्त सुन्दर प्रश्न संयोजित है। व्यक्ति की वैयक्तिक मान्यतायें किस स्तर तक उसके चिन्तन, साहित्य को प्रभावित करती है यह यहाँ देखा जा सकता है।"

"एक श्रावक नें कमलों को एकत्रित कर जोर से शत स्तुतियाँ करते हुए, पूजन में इन कमलों के 1/3 भाग और इस 1/3 भाग के 1/3, 1/4, 1/6, भागों को क्रमशः जिनवर ऋषभ से लेकर चार तीर्थंकरों को इन्हीं 1/3 भाग कमलों के 1/9 और 1/12 भागों को सुमतिनाथ को तब शेष 19 तीर्थंकरों को प्रमुदित मन से 2–2 कमल भेंट किये। उन सब कमलों का संख्यात्मक मान बताओ।

इस प्रश्न को हल करने का नियम बीजीय रूप से निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$n=\frac{a}{1-b}$$

यहाँ $n=$अज्ञात राशि, $a=$शेष राशि, $b=$भिन्नीय मानों का योग है।

ऋषभनाथ को चढ़ाये पुष्प $=\frac{1}{3}$

अजितनाथ ,, ,, $=\frac{1}{3}\times\frac{1}{3}$

सम्भवनाथ ,, ,, $=\frac{1}{3}\times\frac{1}{4}$

अभिनन्दननाथ ,, $=\frac{1}{3}\times\frac{1}{6}$

सुमतिनाथ ,, ,, $=\frac{1}{3}\times\frac{1}{9}+\frac{1}{3}\times\frac{1}{12}$

शेष 19 तीर्थंकरों ,, $=2\times19=38$

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$\text{भिन्नीय भागों का योग} = \frac{1}{3} + \frac{1}{9} + \frac{1}{12} + \frac{1}{18} + \frac{1}{27} + \frac{1}{36}$$

$$= \frac{70}{3 \times 36} = \frac{70}{108}$$

$$n = \frac{38}{1 - \frac{70}{108}} = \frac{38}{\frac{38}{108}} = 108$$

2. **एक घातीय युगपत समीकरण**—दो भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं की कुछ-कुछ संख्याओं (गिनतियों) का मूल्य दो समूहों में दिये जाने से सृजित प्रश्नों के समाधान हम इस प्रकार के समीकरणों को प्राय: प्राप्त करते हैं अर्थात् x, y दो अज्ञात राशियाँ हों तो एक घातीय युगपत समीकरण निम्न प्रकार से हो सकता है—

$$ax + by = m \qquad (1)$$

$$bx + ay = n \qquad (2)$$

इसको हल करने की विधि को बीजीय रूप में निम्न प्रकार लिख सकते हैं—

$$a^2x + aby = am \qquad [(1) \times a]$$

$$b^2x + aby = bn \qquad [(2) \times b]$$

घटाने पर

$$a^2x - b^2x = am - bn$$

$$x = \frac{am - bn}{a^2 - b^2}$$

इस विधि को संख्यात्मक उदाहरण से भी स्पष्ट किया गया है। 9 मातुलुंग और 7 सुगन्धित कपित्थ फलों की कीमत 107 है। पुन: 7 मातुलुंग और 9 सुगन्धित कपित्थ फलों की कीमत 101 है। हे गणितज्ञ ! मातुलुंग एवं सुगन्धित कपित्थ की कीमत अलग-अलग बताओ।[1]

माना मातुलुंग की कीमत x एवं कपित्थ की y है तो

$$9x + 7y = 107 \qquad (1)$$

$$7x + 9y = 101 \qquad (2)$$

$$9 \times 9x + 9 \times 7y = 107 \times 9$$

$$7 \times 7x + 7 \times 9y = 101 \times 7$$

$$9^2x - 7^2x = 107 \times 9 - 101 \times 7$$

[1] गणितसार संग्रह, 6/140½, 142½, पृ० 127

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$x = \frac{9 \times 107 - 101 \times 7}{9^2 - 7^2}$$

$$= \frac{963 - 707}{32}$$

$$= \frac{256}{32} = 8$$

इसी प्रकार Y $= \frac{7 \times 107 - 101 \times 9}{7^2 - 9^2}$

$$= \frac{-160}{-32} = 5$$

अत: एक मातुलुंग की कीमत $= 8$

एवं एक कपित्थ की कीमत $= 5$

एक घातीय, अनेक अज्ञात राशियों वाले समीकरण—महावीराचार्य द्वारा इस श्रेणी में वर्णित प्रश्नों को आधुनिक गणित में अनुपात, समानुपात या समानुपाती भाग के अन्तर्गत लिया जाता है। इस प्रकार के प्रश्नों की शृङ्खला का एक उदाहरण निम्नलिखित है—

चार व्यापारियों ने मिलकर अपने धन को व्यापार में लगाया। उन लोगों में से प्रत्येक से अलग-अलग महसूल पदाधिकारी ने व्यापार में लगाई गई वस्तु के मान के विषय में पूछा। उनमें से एक श्रेष्ठ वणिक ने अपनी रकम को घटाकर 22 बतलाया। दूसरे ने 23, तीसरे ने 24 एवं चौथे ने 27 बतलाया। इस प्रकार कथन करने में प्रत्येक ने अपनी-अपनी लगाई हुई रकमों को वस्तु के कुल मान में से घटा लिया था। बतलाओ कि प्रत्येक का उस पण्य द्रव्य में कितना-कितना हिस्सा था।[1]

महावीराचार्य ने इस प्रकार के प्रश्नों को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि—

वस्तुओं के संयुक्त शेषों के मानों के योग को एक कम मनुष्यों की संख्या द्वारा भाग देने पर भजनफल वस्तुओं का कुल मान होगा। इस कुल मान को विशिष्ट मानों द्वारा ह्रासित करने पर संवादी दशाओं में प्रत्येक स्वामी की हस्तगत वस्तु का मान प्राप्त होगा।[2]

बीजीय रूप से माना चार व्यापारियों का भाग क्रमशः x_1, x_2, x_2, x_4 हो, तो नियमानुसार—

$$X_1 + X_2 + X_3 + X_4 = \frac{22 + 23 + 24 + 27}{4 - 1}$$

---

[1] गणितसार संग्रह, 6/160–162, पृ० 134

[2] वही, 6/159, पृ० 133

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$=\frac{96}{3}$$

$$=32$$

अत: $X_1=32-22=10$
$X_2=32-23=9$
$X_3=32-24=8$
$X_4=32-27=5$

अत: चारों व्यापारियों में से प्रत्येक का भाग क्रमश: 10, 9, 8, 5 होगा आधुनिक रीति से हल करने पर भी हमें यही मान मिलते हैं—

माना कुल धन a है तो

प्रश्नानुसार—

$$22+X_1=a$$
$$23+X_2=a$$
$$24+X_3=a$$
$$27+X_4=a$$

जोड़ने पर $96+(X_1+X_2+X_3+X_4)=4a$

$$96+a=4a$$
$$96=3a$$
$$\frac{96}{3}=a$$

अत: $32=a$

अब $X_1=32-22=10$
$X_2=32-23=9$
$X_3=32-24=8$
$X_4=32-27=5$

स्पष्टत: आधुनिक विधि से प्राप्त फल महावीराचार्य द्वारा प्राप्त फलों के समान ही है। मिश्रक व्यवहार प्रमाण में ब्याज के प्रश्नों को भी बीजगणितीय रीति से हल किया गया है। इनमें दिये गये प्रश्न युगपत समीकरण बनाते हैं।

उदाहरणार्थ—यदि मूलधन क्रमश: 40, 30, 20 एवं 50 तथा इन पर लगने वाले ब्याज का समय क्रमश: 5, 4, 3, 6 मास है तो प्रत्येक ब्याज राशि ज्ञात करो, जबकि ब्याज राशियों का योग 34 है।

इस प्रश्न को हल करने का नियम निम्नवत् है—

"प्रत्येक मूलधन संवादी समय द्वारा गुणित होकर तथा ब्याजों की कुल रकम द्वारा गुणित होकर, अलग-अलग उन गुणनफलों के योग द्वारा विभाजित किया जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है जो प्रत्येक मूलधन को उसके संवादी समय द्वारा गुणित करने पर प्राप्त होते हैं। प्राप्त फल उस मूलधन सम्बन्धी ब्याज घोषित किया जाता है।[1]

माना मूलधन क्रमशः $a_1, a_2, a_3 \cdots\cdots$ है।

ब्याज क्रमशः $i_1, i_2, i_3 \cdots\cdots$ है।

एवं समय $t_1, t_2, t_3 \cdots\cdots$ है।

तो

$$i_1 = \frac{(\Sigma\, ir)\, a_1\, t_1}{a_1\, t_1 + a_2\, t_2 + a_3\, t_3 \cdots + a_r\, t_r \cdots\cdots}$$

यदि ब्याजों की कुल राशि $\Sigma\, i_r = I$ तो

$$i_1 = \frac{1\, a_1\, t_1}{\Sigma\, a_r\, t_r}$$

उपर्युक्त नियम से चर्चित प्रश्न का हल निम्न होगा—

$$40 \text{ रु० पर 5 मास का ब्याज} = \frac{34 \times 40 \times 5}{40 \times 5 + 30 \times 4 + 20 \times 3 + 50 \times 6}$$

$$= \frac{34 \times 200}{200 + 120 + 60 + 300}$$

$$= \frac{6800}{680} = 10 \text{ रुपये}$$

$$30 \text{ रु० पर 4 माह का ब्याज} = \frac{36 \times 30 \times 4}{680} = 6 \text{ रुपये}$$

$$20 \text{ रु० पर 3 माह का ब्याज} = \frac{34 \times 20 \times 3}{680} = 3 \text{ रुपये}$$

$$50 \text{ रु० पर 6 माह का ब्याज} = \frac{34 \times 50 \times 6}{680} = 15 \text{ रुपये}$$

अतः ब्याज राशियाँ क्रमशः 10, 6, 3 रुपये हुईं। इसी प्रकार संयुक्त मूलधन दिये होने पर विभिन्न मूलधन ज्ञात करने का सूत्र 151 बीजीय रूप से—

$$a_1 = \frac{A.\, i_1/t_1}{i_1/t_1 + i_2/t_2 + i_3/t_3 + \cdots}$$

एवं विभिन्न समय ज्ञात करने का सूत्र

$$t_1 = \frac{T\, i_1/a_1}{\frac{t_1}{a_1} + \frac{t_2}{a_2} + \frac{t_3}{a_3} + \cdots\cdots\cdots}$$

---

[1] गणितसार संग्रह 6/37, पृ० 98

[2] गणित सार संग्रह, 6/39, पृ० 99

[3] वही, 6/42, पृ० 99

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$=\Sigma tr=t_1+t_2+t_3+\cdots\cdots$$

वर्ग समीकरण—गणितसार संग्रह के प्रकीर्णक व्यवहार प्रकरण में भिन्नों पर दस प्रकार के विविध प्रश्नों का वर्णन है। इस प्रकरण के नियमों को बीजीय रूप में व्यक्त करने पर हमें अनेक प्रकार के वर्ग समीकरण एवं उनको हल करने की विधियाँ प्राप्त होती है।

इन समीकरणों में आचार्य ने वर्ग समीकरणों के दोनों मूलों का परिकलन किया है किन्तु अनेक स्थानों पर विशेषत: जहाँ वर्गराशि का मान ऋणात्मक प्राप्त हुआ है वहाँ उस मान को छोड़ दिया है क्योंकि प्रकृति से किसी वास्तविक राशि का वर्ग ऋणात्मक नहीं होता है।

मूल जाति के प्रश्नों के हल का नियम प्रतिपादित करते हुए आपने लिखा कि—

"अज्ञात राशि के वर्गमूल का आधा गुणांक और ज्ञात शेष में से प्रत्येक को अज्ञात राशि के भिन्नीय गुणांक से ह्रासित एक द्वारा भाजित करना चाहिये। इस तरह बने हुए ज्ञात शेष का अज्ञात राशि के वर्गमूल गुणांक के वर्ग में जोड़ते हैं। प्राप्त राशि के वर्गमूल में इसी प्रकार वर्ग हुए अज्ञात राशि के वर्गमूल के गुणांक को जोड़ते है। तत्पश्चात् परिणामी राशि का पूर्ण वर्ग करने पर इस मूल प्रकार में इष्ट अज्ञात राशि प्राप्त होती है।[1]

बीजीय रूप में—

$$\text{यदि} \left(1-\frac{a}{b}\right) x-c\sqrt{x}=d$$

$$x=\left[\frac{c/2}{1-a/b}+\sqrt{\left(\frac{c/2}{1-a/b}\right)^2+\frac{d}{(1-a/b)}}\right]^2$$

उदाहरणार्थ प्रश्न—ऊँटों के झुंड का 1/4 भाग वन में देखा गया। इस झुंड के वर्गमूल का दुगुना भाग पर्वत के उतारों में देखा गया। 5 ऊँट के तिगुने नदी के तीर पर देखे गये। ऊँटों की कुल संख्या क्या है।

$$\text{अर्थात्}\ \frac{1}{4}x+2\sqrt{x}+15=x$$

$$\left(\frac{1}{4}-1\right)x+2\sqrt{x}+15=0$$

$$\left(1-\frac{1}{4}\right)x-2\sqrt{x}-15=0$$

---

[1] गणितसार संग्रह, 4/33, पृ० 77

[2] वही, पृ० 77

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$\left(1-\frac{1}{4}\right)x-2\sqrt{x}=15$$

$$x=\left[\frac{2/2}{3/4}+\sqrt{\left(\frac{2/2}{3/4}\right)^2+\frac{15}{3/4}}\right]^2$$

$$x=\left[\frac{4}{3}\pm\sqrt{\left(\frac{4}{3}\right)^2+20}\right]^2$$

$$\sqrt{x}=\pm\left[\frac{4}{3}\pm\sqrt{\frac{196}{6}}\right]$$

$$=\frac{4}{3}\pm\frac{14}{3}$$

$$=6\ -\frac{10}{3}.$$

$$x=\frac{100}{9}$$

यहाँ आचार्य ने स्पष्ट रूप से 100/9 मान छोड़ दिया है एवं 36 को ग्रहण किया है।

एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

"झुण्ड के 1/16 वें भाग द्वारा गुणित मयूरों के झुण्ड का 1/16 वाँ भाग, आम के वृक्ष पर पाया गया। स्व द्वारा गुणित शेष का 1/4 वाँ भाग तथा शेष 14 मयूरों को तमाल वृक्ष के झुंड में देखा गया। बतलाओ वे कुल कितने हैं।"[1]

इस प्रश्न को बीजीय रूप से लिखने पर निम्न समीकरण निकलता है—

$$\frac{x}{16}\cdot\frac{x}{16}+\frac{15\ x}{16\times 9}\times\frac{15\ x}{16\times 9}+14=x$$

या $$\frac{x^2}{16^2}+\frac{225\ x^2}{16^2\times 9^2}+14=x$$

या, $$\frac{9^2\ x^2+15^2\ x^2}{16^2\times 9^2}+14=x$$

या, $$\frac{(81+225)}{256\times 81}\ x^2-x+14=0$$

या, $$\frac{a}{b}\ x^2-x+c=0$$

---

[1]. गणितसार-संग्रह 4/59, पृ०—79

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रश्न को हल करने का नियम बीजीय रूप से निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—

$$x = \frac{b}{a} \pm \sqrt{\left(\frac{b}{a} - b\,c\right)^2 b/a}$$

अन्य भी अनेक उदाहरण यत्र-तत्र आये हैं जिनमें वर्ग समीकरण को हल किया गया।

युगपत वर्ग समीकरण—महावीराचार्य ने प्रकीर्णक व्यवहार प्रकरण में ही युगपत वर्ग समीकरण के अनेकों प्रश्न उपलब्ध है।

$$x + y = a$$
$$x\,y = b$$

को हल करने हेतु आचार्य ने जो नियम[1] दिया है। उसे बीजीय रूप में निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$x = \frac{1}{2}(a + \sqrt{a^2 - 4b})$$

तथा $y = \frac{1}{2}(a - \sqrt{a^2 - 4b})$

इसके अतिरिक्त महावीराचार्य ने निम्न 2 प्रकार के समीकरणों [युगपत वर्ग] को हल के नियम[2] भी प्रस्तुत किये हैं।

$$x^2 + y^2 = c.\ xy = b$$

$$= \frac{1}{2}[\sqrt{c + 2b} + \sqrt{c - 2b}]$$

$$= \frac{1}{2}[\sqrt{c + 2b} - \sqrt{c - 2b}]$$

$$x^2 + y^2 = c,\ x + y = a$$

$$x = \frac{a + \sqrt{2c - a^2}}{2}$$

$$y = \frac{a - \sqrt{2c - a^2}}{2}$$

विषम संक्रमण का नियम—दो विशिष्ट प्रकार के समीकरणों को हल करने हेतु हिन्दू गणितज्ञों ने "विषमकर्म" विधि का प्रयोग किया। महावीराचार्य ने इसे विषम संक्रमण[3] की संज्ञा दी है।

---

[1] गणितसार-संग्रह, 7/129½, पृ० 217

[2] वही, 7/125½, 7/127½, पृ०

[3] वही, 6/2, पृ० 91

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$\left(1-\frac{1}{4}\right)x-2\sqrt{x}=15$$

$$x=\left[\frac{2/2}{3/4}+\sqrt{\left(\frac{2/2}{3/4}\right)^2+\frac{15}{3/4}}\right]^2$$

$$x=\left[\frac{4}{3}\pm\sqrt{\left(\frac{4}{3}\right)^2+20}\right]^2$$

$$\sqrt{x}=\pm\left[\frac{4}{3}\pm\sqrt{\frac{196}{6}}\right]$$

$$=\frac{4}{3}\pm\frac{14}{3}$$

$$=6\quad-\frac{10}{3}.$$

$$x=\frac{100}{9}$$

यहाँ आचार्य ने स्पष्ट रूप से 100/9 मान छोड़ दिया है एवं 36 को ग्रहण किया है।

एक अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य है—

"झुण्ड के 1/16 वें भाग द्वारा गुणित मयूरों के झुण्ड का 1/16 वाँ भाग, आम के वृक्ष पर पाया गया। स्व द्वारा गुणित शेष का 1/4 वाँ भाग तथा शेष 14 मयूरों को तमाल वृक्ष के झुंड में देखा गया। बतलाओ वे कुल कितने हैं।"[1]

इस प्रश्न को बीजीय रूप से लिखने पर निम्न समीकरण निकलता है—

$$\frac{x}{16}\cdot\frac{x}{16}+\frac{15\,x}{16\times 9}\times\frac{15\,x}{16\times 9}+14=x$$

या $\dfrac{x^2}{16^2}+\dfrac{225\,x^2}{16^2\times 9^2}+14=x$

या, $\dfrac{9^2\,x^2+15^2\,x^2}{16^2\times 9^2}+14=x$

या, $\dfrac{(81+225)}{256\times 81}\,x^2-x+14=0$

या, $\dfrac{a}{b}\,x^2-x+c=0$

---

[1]. गणितसार-संग्रह 4/59, पृ०—79

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रश्न को हल करने का नियम बीजीय रूप से निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—

$$x=\frac{b}{a}\pm\sqrt{\left(\frac{b}{a}-b\,c\right)^2 b/a}$$

अन्य भी अनेक उदाहरण यत्र-तत्र आये हैं जिनमें वर्ग समीकरण को हल किया गया।

युगपत वर्ग समीकरण—महावीराचार्य ने प्रकीर्णक व्यवहार प्रकरण में ही युगपत वर्ग समीकरण के अनेकों प्रश्न उपलब्ध है।

$$x+y=a$$
$$x\,y=b$$

को हल करने हेतु आचार्य ने जो नियम[1] दिया है। उसे बीजीय रूप में निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$x=\frac{1}{2}(a+\sqrt{a^2-4b})$$

तथा $y=\frac{1}{2}(a-\sqrt{a^2-4b})$

इसके अतिरिक्त महावीराचार्य ने निम्न 2 प्रकार के समीकरणों [युगपत वर्ग] को हल के नियम[2] भी प्रस्तुत किये हैं।

$$x^2+y^2=c.\ xy=b$$

$$=\frac{1}{2}[\sqrt{c+2b}+\sqrt{c-2b}]$$

$$=\frac{1}{2}[\sqrt{c+2b}-\sqrt{c-2b}]$$

$$x^2+y^2=c,\ x+y=a$$

$$x=\frac{a+\sqrt{2c-a^2}}{2}$$

$$y=\frac{a-\sqrt{2c-a^2}}{2}$$

विषम संक्रमण का नियम—दो विशिष्ट प्रकार के समीकरणों को हल करने हेतु हिन्दू गणितज्ञों ने "विषमकर्म" विधि का प्रयोग किया। महावीराचार्य ने इसे विषम संक्रमण[3] की संज्ञा दी है।

---

[1] गणितसार-संग्रह, 7/129½, पृ० 217

[2] वही, 7/125½, 7/127½, पृ०

[3] वही, 6/2, पृ० 91

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बद्ध युगपत वर्ग समीकरण निम्नवत् है :—

$$x^2-y^2=m$$
$$x-y=n \qquad (1)$$

तथा $x^2-y^2=m$
$$x+y=p \qquad (2)$$

महावीराचार्य द्वारा दी गई विधि को बीजीय रूप से अभिव्यक्त करने पर–

$$x=\frac{1}{2}\left(\frac{m}{n}+n\right)$$
$$y=\frac{1}{2}\left(\frac{m}{n}-n\right) \qquad (1)$$
$$x=\frac{1}{2}\left(p+\frac{m}{p}\right)$$
$$y=\frac{1}{2}\left(p-\frac{m}{p}\right) \qquad (2)$$

मिश्रक व्यवहार में ब्याज सम्बन्धी अनेक ऐसे प्रश्न प्राप्त होते हैं जिनमें युगपत वर्ग समीकरणों का प्रयोग होता है।

माना कोई निश्चित मूलधन $=u$

एक अवधि r हेतु u पर ब्याज $=x$

एवं अवधि s हेतु u पर ब्याज $=y$

तो $u+x=a$ [माना]

$u+y=b$ [माना]

यदि ब्याज की दर $=\omega$ प्रति $\propto$ है तो

$$u+x=a \quad ur.\frac{\omega}{\alpha}=x$$
$$u+y=b, \ us.\frac{\omega}{\alpha}=y$$
$$\frac{r}{s}=\frac{x}{y}=\frac{u-a}{u-b}$$
$$r\,(u-b)=s\,(u-a)$$
$$r\,u-r\,b=s\,u-s\,a$$
$$(r-s)\;u=r\,b-s\,a$$
$$u=\frac{r\,b-s\,a}{r-s}$$
$$x=\frac{(a-b)\,r}{(r-s)}$$

---

[1]. गणितसार-संग्रह, 6/47, पृ० 101

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$y=\frac{(a-b)}{r-s}.\ s$$

$$w=\frac{(a-b)}{r\ b-s\ a}.\ \alpha.$$

अन्य भी अनेक प्रकार के युगपत वर्ग समीकरण के अनुप्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं।

उच्च घातीय समीकरण—महावीराचार्य ने कतिपय उच्च घातीय समीकरणों का हल गुणोत्तर श्रेणी के सन्दर्भ में दिया है। गुणोत्तर श्रेणी का n+1 वाँ पद, जबकि 'a' प्रथम पद एवं 'r' सार्वअन्तर हो, तो निम्न रूप से दिया जाता है—

$ar^n = In+1 = q$ (माना)........(1)

पुन: पदों का योग पद

$$S_{n+1}=a\frac{(r^n-1)}{r-1}=P........(2)$$

यहाँ अज्ञात राशि r है। प्रथम समीकरण का हल निम्न प्रकार दिया गया—

"गुणघन (q) जहाँ प्रथमपद द्वारा विभाजित होता है तो भागफल ऐसी स्वगुणित राशि के गुणनफल के बराबर होता है, जिसमें वह राशि पदों की संख्या बार प्रगट होती है।[1]

$$r=\sqrt[n]{\frac{q}{a}}$$

पुन: समी० को हल करने हेतु निम्न नियम उपलब्ध है—

वह राशि जिसके द्वारा श्रेणी के योग को प्रथम पद द्वारा विभाजित करने को प्राप्त हुई राशि में से एक घटाने पर उत्पन्न राशि में कथित भाजन सम्भव हो (जबकि समय-समय पर सब उत्तरोत्तर भजनफलों में से एक घटाने के बाद भाग देने की यह विधि की जाती हो) तो वह साधारण निष्पत्ति होती है।[2]

बीजीय रूप में

$$a\ \frac{(r^n-1)}{r-1}\div a=\frac{r^{n1}-1}{r-1}$$

$$\text{या}\ \frac{(r^n+1)}{r-1}-1=\frac{r^n-r}{r-1}=r\ \frac{(r^{n-1})}{r-1}$$

---

[1] गणितसार संग्रह, 2/97, पृ० 30

[2] वही 2/101, पृ० 31

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह राशि स्पष्टतः r—1 से विभाज्य है।

इसको हल करने हेतु महावीर द्वारा प्रस्तावित विधि को इस प्रकार समझा जा सकता है। योग को प्रथम पद से भाग देकर भजनफल में से घटाओ फिर किसी जाँच भाजक द्वारा शेष फल को भाग दो। प्राप्त भजनफल में से पुनः 1 घटाकर उसी जाँच भाजक से भाग दो यह क्रिया बार-बार दोहराने से यदि अन्त में भजनफल एक आ जाये तो जाँच भाजक ही गुणक (साधारण निष्पत्ति) होता है। यहाँ जाँच भाजक का चयन अपेक्षानुरूप स्वतन्त्रता से किया जाता है।

इस विधि को निम्न उदाहरण से सरलता से समझा जा सकता है।

यदि किसी गुणोत्तर श्रेणी में प्रथम पद-3, पदों की संख्या-6, तथा श्रेणी का योग-4095 है तो साधारण निष्पत्ति बताओ।

$$4095 = 3\frac{(r^6-1)}{r-1}$$, r का मान ज्ञात करना है

$$\frac{4095}{3} = 1364$$

$$1365 - 1 = 1364$$

माना जाँच भाजक $= 4$ तो

$$\frac{1365}{4} = 341$$

$$841 - 1 = 346$$

$$\frac{340}{4} = 85$$

$$85 - 1 = 84$$

$$\frac{84}{4} = 21$$

$$21 - 1 = 20$$

$$\frac{20}{4} = 5$$

$$5 - 1 = 4$$

$$\frac{4}{4} = 1$$

अतः अभीष्ट साधारण निष्पत्ति 4 (अर्थात् r=4) होगी।

महावीराचार्य ने निम्न प्रकार के कतिपय समीकरणों का भी उल्लेख किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$a_1\sqrt{b_1x}+a_2\sqrt{b_2(x-a_1\sqrt{b_1x}}+a_3\{\sqrt{b_3(x-a_1\sqrt{b_1x}}$$
$$-a_3\sqrt{b_3(x-a_1\sqrt{b_1x})}\}+\ldots\ldots+R=x$$

या, $$x-a_1\sqrt{b_1x}-a_2\sqrt{b_2(x-a_1\sqrt{b_1x}}-a_3\sqrt{b_3(x-a_1\sqrt{b_1x}}$$
$$-a_2\sqrt{b_2(x-a_1\sqrt{b_1x})}=R$$

यदि बांई ओर पद हो तो परिमेयीकरण करने पर x की $2r$वीं घात का समीकरण प्राप्त होता है। उचित प्रतिस्थापन द्वारा इस समीकरण को साधारण वर्ग समीकरण में परिवर्तित किया जा सकता है।

यथा उपर्युक्त समीकरण में यदि प्रथम 2 पद ही लें तो

$x-a_2\sqrt{b_2x}=R$ रखने पर

$$x-a_2\sqrt{b_2x}-R=O,\ x-a\sqrt{bx}-R=O$$

$$x=\left\{\frac{a\sqrt{b}}{2}+\sqrt{\left(\frac{a\sqrt{b}}{2}\right)^2+R}\ \right\}^2$$

$$=\left\{\frac{a+\sqrt{a^2+4R/b}}{2}\right\}^2\times b.$$

अर्थात् $x-a_1\sqrt{b_1x}=\left\{\frac{a+\sqrt{a^2+4R/b}}{2}\right\}\times d$

यहाँ $R=$const, $a\sqrt{b}=\sqrt{x}$ का गुणांक है।

निम्न संख्यात्मक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा।

हाथियों के झुण्ड में से उनकी संख्या के 2/3 भाग वर्गमूल का 9 गुना प्रमाण और शेष भाग के वर्गमूल का 6 गुना और अन्त में शेष 24 हाथी वन में देखे गये, जिनके चौड़े गण्ड मण्डल से मद बह रहा था। बतलाओ कुल कितने हाथी थे। माना झुण्ड में हाथियों की संख्या x है तो प्रश्नानुसार

$$9\sqrt{\tfrac{2}{3}x}+6\sqrt{\tfrac{3}{5}(x-9\sqrt{\tfrac{2}{3}x})}+24=x$$

$Y=x-9\sqrt{\frac{2}{3}x}$ रखने पर

$$x-Y+6\sqrt{\tfrac{3}{5}Y}+24=x$$

$$-Y+6\sqrt{\tfrac{3}{5}Y}+24=0$$

$$Y-6\sqrt{\tfrac{3}{5}Y}-24=0$$

---

[1] गणितसार संग्रह 4/51, 52, 54 पृ० 77, 78

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो $$Y=\left[6\pm\sqrt{6^2+4\times\frac{24}{3/5}}\right]^2\times\frac{3}{5}\times\frac{1}{4}$$

$$=\left[\frac{6\pm\sqrt{36+160}}{2}\right]^2\times\frac{3}{5}$$

$$=\left[\frac{6\pm\sqrt{196}}{2}\right]^2\times\frac{3}{5}$$

$$=\left[\frac{6\pm14}{2}\right]^2\times\frac{3}{5}$$

$$=\left[10\right]^2\times\frac{3}{5} \text{ या } \left[-4\right]^2\times\frac{3}{5}$$

$$=60 \text{ या } \frac{48}{5}$$

जब $$x-9\sqrt{\frac{2}{3}x}=60$$

तो $$x=150,\ 24$$

जब $$x-9\sqrt{\frac{2}{3}x}=\frac{48}{5}$$

तो $$x=\frac{3}{5}\left[61+3\sqrt{385}\right]$$

स्पष्टत: $x=150$ ही सम्भव मान है। फलत: x का केवल धनात्मक मूल ही महावीर ने लिया।

कुछ प्रश्नों में प्रतिस्थापन की प्रक्रिया को 1 से अधिक बार करना पड़ता है। यथा—

वाराहों के झुण्ड के अर्द्धभाग के वर्गमूल की चौगुनी राशि जंगल में गयी जहाँ शेर क्रीड़ा कर रहे थे। शेष झुण्ड के दसवें भाग के वर्गमूल की आठ गुनी राशि पर्वत पर गयी। शेष के अर्द्ध भाग के वर्गमूल की नौ गुनी राशि नदी के किनारे गयी और अन्त में 56 वाराह वन में देखे गये। बताओ कुल कितने वाराह है।[1]

$$4\sqrt{\frac{x}{2}}+8\sqrt{\frac{1}{10}\left(x-4\sqrt{\frac{x}{2}}\right)}+9$$

$$=\sqrt{\frac{1}{2}\left(x-4\sqrt{\frac{x}{2}}\right)-8\sqrt{\frac{1}{10}\left(x-1\sqrt{\frac{x}{2}}\right)}}+56$$

[1] गणितसार संग्रह 3/89, पृ० 57

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$y=x-4\sqrt{\frac{x}{2}}$$

$$y-8\frac{y}{10}-9\sqrt{\frac{y-8\sqrt{y/10}}{2}}=56$$

पुनः $z=y-8\sqrt{\frac{y}{10}}$ रखने पर

$$z-9\sqrt{\frac{z}{2}}=56$$

$$z-9\sqrt{\frac{1}{2}}\sqrt{z}-56=0$$

$$z=\left[\frac{9+\sqrt{9^2+\frac{4\times 56}{1/2}}}{2}\right]^2\times\frac{1}{2}$$

$$=\left[\frac{9+\sqrt{81+488}}{2}\right]^2\times\frac{1}{2}=128$$

अतः $y-8\sqrt{\frac{1}{10}}\,y=128$

$$y=\left[\frac{8+\sqrt{64+4\times 128\times 10}}{2}\right]^2=160$$

अतः $x-4\sqrt{\frac{1}{2}}\sqrt{x}=160$

$$x=\left[\frac{4+\sqrt{64+4\times 160\times 2}}{2}\right]^6\times\frac{1}{2}=200$$

अतः वाराहों की संख्या=200

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महावीराचार्य ने अत्यन्त जटिल प्रश्नों का समाधान सफलतापूर्वक किया है।

कुट्टक (एक घातीय अनिर्धारित समीकरण)— $\frac{a\,x+c}{b}=y$ अथवा इसके समान रूप के समीकरणों को भारतीय गणित में कुट्टक की संज्ञा दी जाती है। अन्य पूर्ववर्ती गणितज्ञों की भाँति आपने भी इसके साधन की विधि बतायी है।

"अज्ञात राशि के गुणक को दिये गये भाजक द्वारा विभाजित करते हैं। फिर प्रथम भागफल को अलग कर देते हैं। इसके बाद विभिन्न परिणामी शेषों द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभिन्न परिणामी भाजकों के उत्तरोत्तर भाग से प्राप्त विभिन्न भजनफलों को एक दूसरे के नीचे रखते हैं। जब शेष फल बहुत छोटी संख्या रह जाती है तो उसको मन से चुनी हुई किसी संख्या से गुणा करते हैं। इस गुणनफल को प्रश्नानुसार दी गई ज्ञात संख्या द्वारा बढ़ाने अथवा ह्रासित करते हैं और तब उत्तरोत्तर भाग की विधि से प्राप्त अंतिम भाजक द्वारा विभाजित करके रखते हैं। इस प्रकार मन से चुनी हुई संख्या एवं अभी प्राप्त भजनफल को भी उपरोक्त भजनफलों के नीचे लिखते हैं। इस प्रकार वल्लिका सदृश शृंखला मिलती है।

इस शृंखला की निम्नतम संख्या को उसके ठीक ऊपर की संख्या में उसके भी ऊपर की संख्या से गुणा करने से प्राप्त गुणनफल में जोड़ते हैं। यह रीति तब तक जारी रखते हैं जब तक शृंखला समाप्त नहीं हो जाती। इस योग में पहले ही दिये गये भाजक का भाग देते हैं। प्राप्त शेषफल अज्ञात राशि का मान होता है इसके संगत दूसरी अज्ञात राशि (y) का मान भी निकाला जा सकता है।

उपरोक्त विधि को निम्न उदाहरण से ज्यादा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। वस्तुतः यह विधि पूर्ववर्ती गणितज्ञ आर्यभट्ट की ही संशोधित विधि है।

केलों की 63 ढेरियाँ एवं 7 केले के फल 23 व्यक्तियों में बराबर-बराबर बाँट दिये गये। जिससे शेष कुछ भी न बचा। बताओ ढेरी में कितने फल थे।

बीजीय रूप से यह कुट्टक का रूप लेता है।

$$\frac{63x+7}{23}=y$$

यहाँ भाजक 23, अज्ञात राशि x है।

सर्वप्रथम 63 को 23 द्वारा विभाजित करते हैं एवं पुनः भाग की क्रिया निम्नवत् अपनायी गयी :—

```
                                          स्तम्भ
23) 63 ( 2                                   1
    46                                       2
   ----                                      1
    17 ) 23 ( 1                              4
         17
        ----
         6 ) 17 ( 2
             12
            ----
             5 ) 6 ( 1
```

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


```
5 ) 6 ( 1
    5
   ———
    1 ) 5 ( 4
        4
       ———
        1
```

प्रथम भजनफल को छोड़ देने पर पूर्वपृष्ठांकित स्तम्भ मिलता है। अब नियमानुसार एक ऐसी संख्या का चयन करना है जिसको अंतिम शेष । द्वारा गुणित करने एवं 7 में जोड़ने पर प्राप्त योगफल अंतिम भाजक (यहाँ पर है) द्वारा भाज्य हो। माना हमने संख्या "1" चुनी। तो 1+1=1, 1+7=8, $\frac{8}{1}$=8 अब। एवं 8 को क्रमशः स्तम्भ में 4 के नीचे लिखते हैं तो स्तम्भ निम्न रूप ग्रहण करता है। इस प्रकार प्रथम स्तम्भ की रचना पूर्ण हो गयी।

1
2
1
4
1
8

द्वितीय स्तम्भ की रचना हेतु हम सर्वप्रथम प्रथम स्तम्भ के सबसे नीचे से एक ऊपर वाला अंक अर्थात । का उसके भी ऊपर वाले अंक अर्थात 4 से गुणा करके । के नीचे वाले अंक 8 में जोड़ते हैं तो 1×4+8=12 प्राप्त होता है जिसे 4 के सम्मुख लिखते हैं। पुनः 12 का 4 के ऊपर वाले अंक 1 से गुणा करके इसको 4 के नीचे वाले 1 में जोड़कर योगफल (12×1+=13) 1 के सम्मुख लिखते हैं। पुनः 13 को 1 के ऊपर वाले 2 (यानी ऊपर से 1 कम) से गुणा करके 12 में जोड़कर योगफल (13×2+12=38) 13 के ऊपर लिखते हैं। उपरांत 38 का 2 के ऊपर वाले । से गुणा करके उसमें 13 जोड़कर योगफल (38×1+13=51) लिखते हैं। यह 51 जब 23 द्वारा भाजित होता है तो शेषफल 5 बचता है जो का अभिष्ट मान है।

x के इस मान के संगत y का मान

$$y=\frac{63\times5+7}{23}=\frac{315+7}{23}=14$$

प्राप्त होता है।

सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि महावीराचार्य द्वारा चर्चित/साधित बीज-गणितीय समीकरणों में मौलिकता, विविधता एवं व्यापकता है। संदर्भित उदाहरण जीवन के विविध क्षेत्रों से संकलित कर विषय में रोचकता का समावेश किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्य व्यवहार

त्रिभुज, चतुर्भुज, वृत्त आदि विविध ज्यामितीय आकृतियों की रचना, क्षेत्रफल आदि की चर्चा करने वाले क्षेत्र गणित व्यवहार में "जन्य व्यवहार" शीर्षक प्रथम प्रकरण के अन्तर्गत उन विधियों को समायोजित किया गया है जिनके माध्यम से सुविधापूर्वक चुनी गई बीजीय संख्याओं के पदों में निश्चित गुण धर्म रखने वाले त्रिभुजों एवं चतुर्भुजों को अभिव्यक्त किया जा सके। स्वेच्छा पूर्वक चुनी गई परिमेय संख्याओं के पदों में व्यक्त किये जा सकने वाले समस्त त्रिभुजों/चतुर्भुजों को जन्य त्रिभुज/चतुर्भुज की संज्ञा दी जाती है, एवं इनकी रचना हेतु स्वेच्छा पूर्वक चुनी गई बीज राशियाँ, 'बीज' कहलाती है। सामान्यत: ये घनात्मक पूर्णांक राशियाँ होती हैं।

महावीराचार्य ने Diophontus (275 A. D.) के विपरीत सर्वत्र जन्य चतुर्भुजों की चर्चा की है। यद्यपि यह सत्य है कि उन्होंने अनेकश: द्विसम (Isocells) एवं विषम (Scalene) त्रिभुजों की चर्चा की है किन्तु कहीं भी जन्य समकोण त्रिभुजों (Rational right angled triagles) की चर्चा नहीं की है। वे सर्वत्र जन्य चतुर्भुज को लेते हैं जिसके विकर्ण से दो विभाग करने पर जन्य त्रिभुज मिलते हैं।

निम्नलिखित पंक्तियों में हमने महावीराचार्य द्वारा प्रस्तुत कतिपय विशिष्ट विधियों की चर्चा की है।

समकोण त्रिभुज का निर्माण—जन्य आयत चतुरस्र क्षेत्र के निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत आपने समकोण त्रिभुज के निर्माण का निम्नलिखित नियम दिया है।

"यदि m एवं n बीज संख्यायें हो, तो ऊँचाई $= m^2 - n^2$ आधार $= 2mn$ तथा कर्ण $= m^2 + n^2$ होगा।[1]

एक अन्य नियम में महावीर ने बीजों (m, n) से प्राप्त संख्याओं से ऊंचाई, आधार एवं कर्ण प्राप्त करने का नियम दिया है।[2]

ऊंचाई $= (m+n)\,(m-n)$

$$\text{आधार} = \frac{(m+n)^2 - (m-n)^2}{2}$$

$$\text{कर्ण} = \frac{(m+n)^2 + (m-n)^2}{2}$$

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/10½, पृ० 204

[2] वही, 7/93½, पृ० 205

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन नियमों के तत्काल बाद 2 उदाहरण दिये गये है जिनमें 2, 3 तथा 3, 5 बीज राशियाँ दी गई हैं। प्रथम एवं द्वितीय नियमों के अनुसार क्रमिक रूप से इन बीजों से प्राप्त फल निम्नवत है—

इच्छित राशि		सूत्र	बीज (2, 3)	बीज (3, 5)
लम्ब	m^2-n^2	या, $(m+n)(m-n)$	5	16
आधार	$2mn$	या $\frac{(m+n)^2-(m-n)^2}{2}$	12	30
कर्ण	m^2+n^2	या, $\frac{(m+n)^2+(m-n)^2}{2}$	13	34

यदि लम्ब, आधार एवं कर्ण दिये हों तो पुनः बीज राशि प्राप्त करने का नियम भी दिया है।

समकोण त्रिभुज का निर्माण जबकि एक भुजा दी हो—"यदि दी हुई भुजा लम्ब हो तो मन से कोई पूर्णांक संख्या का चयन करके उससे लम्ब में भाग देते हैं। पुनः भाजक एवं परिणामी भजनफल के मध्य संक्रमण क्रिया करने पर बीज राशियाँ प्राप्त होती हैं इनकी मदद से पूर्व नियमों के अनुरूप आधार एवं कर्ण प्राप्त होते हैं।"[1]

बीजीय रूप से माना $a=$प्रदत्त भुजा, $p=$चयनित राशि, तो बीज

$$=\left\{\frac{1}{2}\left(\frac{a}{p}+p\right), \frac{1}{2}\left(\frac{a}{p}-p\right)\right\}$$

इसके विपरीत यदि प्रदत्त भुजा आधार हो तो उसकी अर्द्धराशि में स्वेच्छा पूर्वक चयनित भाजक से भाग देने पर प्राप्त राशि एवं चयनित भाजक दोनों बीज राशि बन जाते हैं।[2]

उदाहरणार्थ यदि प्रदत्त आधार $=a$, चयनित भाजक $=q$ तो बीज राशियाँ $=\left(\frac{a}{2q}, q\right)$

एक अन्य नियम में आचार्य ने लम्ब भुजा ज्ञात होने पर बिना बीजों का परिकलन किये सीधे आधार एवं कर्ण का परिकलन करने का विधान किया है।

"लम्ब भुजा के वर्ग को किसी चुनी हुई संख्या द्वारा भाग दो फिर भाजक और भजनफल में संक्रमण क्रिया करने पर कर्ण और आधार मिलते हैं। इसी प्रकार यदि दी हुई भुजा त्रिभुज का आधार हो तो उसके वर्ग में मन से चुनी हुई किसी संख्या से भाग देते हैं। फिर भाजक और भजनफल में संक्रमण क्रिया करने पर

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/95½, पृ० 205

[2] वही, 7/95½ पृ० 205

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिभुज का लम्ब एवं कर्ण ज्ञात होंगे ।[1]

बीजीय रूप में यदि लम्ब भुजा a एवं स्वच्छित चयनित संख्या p हो तो

$$\text{आधार}=\frac{1}{2}\left(\frac{a^2}{p^2}-p^2\right)$$

$$\text{कर्ण}=\frac{1}{2}\left(\frac{a^2}{p^2}+p^2\right)$$

एवं यदि आधार (प्रदत्त) भुजा a हो एवं स्वैच्छिक चयनित राशि $2q^2$ हो तो ।

$$\text{लम्ब}=\frac{1}{2}\left(\frac{a^2}{2q^2}-2q^2\right)$$

$$\text{कर्ण}=\frac{1}{2}\left(\frac{a^2}{2q^2}+2q^2\right)$$

समकोण त्रिभुज का निर्माण करना जबकि कर्ण ज्ञात हो—ज्ञात लम्ब या आधार के त्रिभुज के जनन की प्रक्रियाओं के बाद महावीर ने ज्ञात कर्ण द्वारा समकोण त्रिभुजों के जनन के 3 भिन्न नियम दिये हैं—

प्रथम नियम—इस नियम में सर्वप्रथम ज्ञात कर्ण से बीज ज्ञात किये जाते है उपरांत इन बीजों से लम्ब एवं आधार ज्ञात किये जाते हैं। नियम निम्नवत है—

"कर्ण एवं मन से चुनी हुई किसी, (समीचीन) संख्या के वर्ग के योग की आधी राशि का वर्गमूल तथा अन्तर की आधी राशि की वर्गमूल करने से बीज राशियाँ प्राप्न होती है ।[2]

बीजीय रूप से यदि कर्ण c एवं स्वैच्छिक चयनित राशि p हो तो अभीष्ट राशियाँ (बीज) $\sqrt{\frac{c-p^2}{2}}$ एवं $\sqrt{\frac{c+p^2}{2}}$ होंगी, पुनः पूर्व नियमानुसार,

$$\text{लम्ब}=\left(\sqrt{\frac{c+p^2}{2}}\right)^2-\left(\sqrt{\frac{p^2-2}{2}}\right)^2=\frac{c+p^2}{2}-\frac{c-p^2}{2}=p^2$$

$$\text{आधार}=2\sqrt{\frac{c+p^2}{2}}\sqrt{\frac{c-p^2}{2}}=\sqrt{c^2-p^4}$$

द्वितीय नियम—इसमें बीज को ज्ञात करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। नियम निम्नवत् है—

कर्ण के वर्ग एवं मन से (समीचीन) रूप में चुनी गई संख्या के वर्ग का अन्तर

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/97$\frac{1}{2}$, पृ० 205

[2] वही, 7/95, पृ० 205

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का वर्गमूल लम्ब भुजा तथा (समीचीन रूप में) चयनित संख्या आधार होती है।[1]

माना चयनित संख्या p हो तो बीजीय रूप में

लम्ब $=\sqrt{c^2-p^2}$

आधार $=p$

स्पष्टत : उपरोक्त दोनों नियमों में p के चयन में हम पूर्णत: स्वतंत्र नहीं है। p के सभी मानों हेतु लम्ब एवं आधार की मापें परिमेय नहीं होगी वे अपरिमेय भी हो सकती है। किन्तु महावीराचार्य का तीसरा नियम अत्यन्त व्यापक एवं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

तृतीय नियम—महावीराचार्य ने इस नियम को कल्पित संख्यात्मक प्रमाण के कर्ण वाले आयत क्षेत्र को प्राप्त करने के नियम के रूप में प्रतिपादित किया था। किन्तु प्रत्येक आयत विकर्ण द्वारा भाजित होने पर 2 समकोण त्रिभुज बनाता है अत: यह नियम समकोण त्रिभुजों हेतु भी समान रूप में उपयोगी एवं व्यवहार्य है।

"दिये गये बीजों की सहायता से प्राप्त विभिन्न आकृतियों में से प्रत्येक लिख लिये (स्थापित किये) जाते हैं और अनके कर्ण की माप के द्वारा कर्ण का दिया गया माप भाजित किया है। इस आकृति की लम्ब भुजा, आधार एवं कर्ण यहाँ प्राप्त हुए भजनफल द्वारा गुणित होकर, इष्ट क्षेत्र की लम्ब भुजा, आधार एवं कर्ण को उत्पन्न करते हैं।"[2]

बीजीय रूप से यदि m एवं n बीज राशियाँ हो तो उसके माध्यम से जन्य समकोण त्रिभुज के कर्ण, लम्ब एवं आधार क्रमश: m^2+n^2, m^2-n^2 तथा $2mn$ प्राप्त होते हैं। यदि नियमानुसार प्रदत्त कर्ण का मान c हो तो नियमानुसार

$\frac{c}{m^2+n^2}$ से तीनों पदों को गुणा करने पर हमें—

कर्ण $=c$

लम्ब $=\left(\frac{m^2-n^2}{m+n^2}\right)c$

आधार $=\left(\frac{2mn}{m^2+n^2}\right)c$

प्राप्त होते हैं। नियम के उपरांत विवेचित उदाहरणों में 65 विकर्ण वाले विभिन्न आयतों के लम्ब एवं आधार बताये है जिनसे परोक्ष रूप से 65 कर्ण वाले जन्य समकोण त्रिभुजों के निम्न समूह प्राप्त होते हैं।

---

[1], गणितसार संग्रह, 7/97½, पृ० 205

[2] वही, 7/122½, पृ० 215

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्ण	लम्ब	आधार
65	39	52
65	25	60
65	33	56
65	16	63

यदि $(m, n)=(1, 2)$ तो $\frac{4-1}{4+1}\times 65=39, \frac{2\times 1\times 2\times 65}{4+1}=52, 65$

यदि $(m, n)=(2, 3)$ तो $\frac{9-4}{9+4}\times 65=25, \frac{2\times 2\times 3\times 65}{4+1} 60, \quad 65$

उपर्युक्त उदाहरणों से इनके आनयन की प्रक्रिया स्पष्टत: समझी जा सकती है।

यहाँ ऐतिहासिक महत्त्व का तथ्य यह है कि इसी नियम को योरोप में Leonardo Fibonacci (1202 A. D.) एवं Vieta (1580 A. D.) द्वारा पुन: अविष्कृत किया गया किन्तु L. E. Dickson सदृश विशिष्ट गणित इतिहासज्ञ भी इनका श्रेय महावीराचार्य को न दे सके अपितु उन्होंने भी भ्रांतिवश इसका श्रेय Fibonacci को दिया।[1]

इस ऐतिहासिक त्रुटि का निराकरण कर इसका श्रेय महावीराचार्य (850 A. D.) को दिया जाना अपेक्षित है।

क्षेत्रफल एवं भुजाओं की माप से सम्बन्धित नियम—महावीराचार्य ने ऐसे जन्य आयतों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया है जिनका क्षेत्रफल किसी भुजा कर्ण या परिमित का अपवर्त्य या उप-अपवर्त्य (Multiple या Sucmbmultiple) हो। यदि x, y किसी भुजा की मापें तथा z विकर्ण की माप है तो इस प्रकार की सभी समस्यायें निम्न समीकरण हल से सम्वन्ध रखती है।

$$\left.\begin{array}{l} x^2+y^2=z^2 \\ mx+ny+p^2=rxy \end{array}\right\} 1$$

यहाँ m, n, r, p परिमेय संख्यायें है $r\neq o$ इनको हल करने हेतु x_1, y_1, z_1 कोई ऐसी संख्या है जो कि $x_1^2+y_1^2=z_1^2$ को संतुष्ट करती है। तो—

$mx_1+ny_1+pz_1=\theta$ (माना) अव x_1, y_1, z_1 के मानों को $\frac{\theta}{rx_1 y_1}$ के अनुपात में रूपांतरित करने पर—

$$x=\frac{x_1\,\theta}{rx_1\,y_1}=\frac{\theta}{ry_1}$$

[1] L. E. Dickson, History to theory of numbers, Vol–II, Washigton, 1919-1923, p,167

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$y=\frac{y_1\ \theta}{rx_1\ y_1}=\frac{\theta}{rx_1}$$

$$z=\frac{z_1\ \theta}{rx_1\ y_1}=\frac{z_1\ \theta}{rx_1\ y_1}$$

स्पष्टत: x, y, z के ये मान (1) को संतुष्ट करते हैं। इस नियम[1] के ज्ञात करने की विधि में पूर्व चर्चित तृतीय नियम की भावना का समावेश है।

इस नियम के तत्काल बाद आचार्य ने तत्सम्बन्धी अनेक रोचक उदाहरण[2] दिये हैं।

भुजाओं से सम्बद्ध किन्तु क्षेत्रफल से असम्बद्ध समस्यायें—महावीराचार्य ने ऐसे समकोण त्रिभुजों को प्राप्त करने का भी नियम दिया है जिसकी भुजाओं के परिमेय संख्याओं से गुणनफलों का योग एक निश्चित राशि (प्रदत्त राशि) के तुल्य हो। इन प्रश्नों का समाधान बीजीय रूप से निम्न समीकरणों के हल के रूप में देखा जा सकता है।

$$\left.\begin{array}{l} x^2+y^2=z^2 \\ rx+sy+tz=A \end{array}\right\}\text{माना (1)}$$

यहाँ r, s, t एवं A ज्ञात परिमेय राशियाँ हैं। पूर्व वर्णित विधि के अनुरूप ही यहाँ भी x_1, y_1 को व्यापक हल माना तो—

$$x_1^2+y_1^2=z_1^2$$

$$rx_1+sy_1+tz_1=p \quad \text{(माना)}$$

महावीराचार्य के अनुसार (1) का हल[3] निम्न होगा।

$$x=\frac{x_1\ A}{p},\ y=\frac{y_1\ A}{p},\ z=\frac{z_1\ A}{p}$$

विशेष स्थिति में $r=s=0$, $t=1$, $A=c$ तो $p=z$

अब $x_1^2+y_1^2=z_1^2$ के सामान्य हल m^2-n^2, $2mn$, m^2+n^2 से हम निम्न हल प्राप्त करते हैं—

$$\left(\frac{m^2-n^2}{m^2+n^2}\right)c,\ \left(\frac{2m\ n}{m^2+n^2}\right)c,\ c$$

यह c कर्ण वाले समकोण त्रिभुज का व्यापक हल है।

इसी प्रकार यदि $r=0$, $s=t=1$, $A=a$ तो हम a लम्ब वाले जन्य समकोण त्रिभुज का निम्न हल प्राप्त करते हैं।

---

[1] गणितसार संग्रह, 7/112½, पृ० 213

[2] वही, 7/115½, 117½, पृ० 214

[3] वही, 7/112½, 118½, 119½, पृ० 213, 214

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$a, \left(\frac{2mn}{m^2-n^2}\right) a, \left(\frac{m^2+n^2}{m^2-n^2}\right) a$$

पुन: यदि $r=s=2, t=0, A=1$ तो $p=2 \;(m-n+2mn)$ अत: इकाई परिमाप वाले सभी आयतों का निम्न से व्यक्त किया जा सकता है।

$$\frac{m^2-n^2}{2(m^2-n^2+2mn)}, \quad \frac{2mn}{2(m^2-n^2+2mn)}$$

यहां m, n स्वेच्छिक बीजीय राशियाँ है। पुन: समान परिमित, s वाले त्रिभुज का हल—

$$\left(\frac{m-n}{2n}\right)s, \left(\frac{n}{m+n}\right)s, \left(\frac{m^2+n^2}{2m(m+n)}\right)s$$

इसके उपरांत महावीराचार्य ने संख्यात्मक उदाहरण दिये यथा "किसी जन्य आयत क्षेत्र की परिमिति है तो गणना कर वताओ कि इस आयत के लम्ब एवं आधार की माप क्या होगी।[1]

आयत युगल—महावीराचार्य ने तीन प्रकार के आयत युगलों की चर्चा की है।

1. आयत जिनकी परिमितियाँ वरावर है किन्तु एक का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल का दुगुना हो।
2. आयत जिनके क्षेत्रफल वरावर हो किन्तु एक आयत की परिमिति दूसरी की दूनी है।
3. एक आयत की परिमिति दूसरे की दूनी है किन्तु पहले का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल का आधा है।

उपरोक्त तीनों प्रकार की समस्यायें बीजीय रूप में निम्न रूप में समन्वित रूप में लिखी जा सकती है।

यदि पहले आयत की भुजायें x एवं y तथा दूसरे की u एवं v है तो—

$$\left.\begin{aligned} 2m(x+y) &= 2n(u+v) \\ p\,xy &= q\,u\,v \end{aligned}\right\} (1)$$

यहाँ m, n, p, q ज्ञात पूर्णांक है। महावीराचार्य ने (1) का हल प्रस्तुत किया है किन्तु वस्तुत: ये अनिर्धारित समीकरण रूप है। जिनका निश्चित हल ज्ञात करना संभव नहीं है।

जन्य समकोण समद्विबाहु त्रिभुज—किसी जन्य आयत क्षेत्र से जन्य समद्विबाहु त्रिभुज की निर्माण की विधि भी महावीराचार्य ने दी है।

'दिये गये वीजों की सहायता से वने हुए आयत के कर्ण अभीष्ट समद्विबाहु त्रिभुज की दो समान भुजायें हो जाता हैं। आयत का आधार दो द्वारा गुणित होकर अभीष्ट त्रिभुज का आधार वन जाता है। आयत सी लम्ब भुजा, अभीष्ट त्रिभुज का

[1] गणितसार संग्रह, 7/118½, पृ० 214

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के शीर्ष से आधार पर गिराया हुआ लम्ब होती है। इस आयत का क्षेत्रफल अभीष्ट त्रिभुज के क्षेत्रफल के समान होता है।[1]

अर्थात यदि A B C D कोई दिया गया आयत है। तो A B को बढ़ाया ओंर A B=B E काट लिया। A C एवं E C को मिलाया यही त्रिभुज A C E अभीष्ट समद्विवाहु त्रिभुज होगा। जिसकी भुजायें आयत के कर्णो के समान है एवं आधार आयत के आधार का दूना है। फलतः क्षेत्रफल आयत के समान है।

बीजीय रूप से यदि m एवं n दो असमान बीज संख्यायें है तो आयत की भुजायें m^2-n^2 2m n तथा विकर्ण m^2+n^2 होगा। अतः अभीष्ट समद्विवाहु हेतु मापें m^2+n^2, m^2+n^2 एवं 4m n होगी।

महावीराचार्य ने ऐसे दो समद्विवाहु त्रिभुजों को प्राप्त करने की विधि का उल्लेख किया है जिनकी परिमितियाँ एवं क्षेत्रफल आपस में दूसरे के अपवर्त्य हो। विधि निम्नवत् है—

परिमिति की अनुपात संख्याओं के वर्ग को क्षेत्रफल की अनुपात संख्याओं से गुणा करो। बढ़े हुए गुणनफल को छोटे गुणनफल से भाग दो। भागफल को 6 एवं 2 से अलग-अलग गुणा करके छोटे में से। को घटाओ। इस प्रकार बीजों का एक कुलक प्राप्त होता है। फिर दोनों परिणामों में अलग-अलग अंतर ज्ञात करो। ऐसा करने से बीजों का दूसरा कुलक प्राप्त होगा। बीजों के इन कुलकों की सहायता से पूर्वोक्त विधि द्वारा अभीष्ट आकृति की भुजायें आदि निकाली जा सकती है।'

बीजीय रूप से यदि S_1 एवं S_2 परिमितियाँ तथा A_1 एवं A_2 क्षेफ़फल हो तथा—

$$\frac{S_1}{S_2}=\frac{m}{n} \text{ एवं } \frac{A_1}{A_2}=\frac{p}{q}$$

यहाँ m, n, p, q संख्यायें ज्ञात पूर्णांक हो तो अभीष्ट त्रिभुज उपरोक्त नियमानुसार निम्न बीज राशियाँ से प्राप्त होंगे।[2]

$$\left(\frac{6n^2 p}{m^2 q}, \ \frac{2n^2 p}{m^2 q}-1\right) \text{ एवं } \left(\frac{4n^2 p}{m^2 q}+1, \ \frac{4n^2 p}{m^2 q}-2\right.$$

जबकि $n^2 p > m^2 q$ हो। महावीराचार्य के अनुमार त्रिभुज की विभिन्न मापें निम्न होगी।

प्रथम कुलक से प्रथम त्रिभुज हेतु—

$$\text{समान भुजायें}=m\left[\left(\frac{6n^2 p}{m^2 q}\right)^2+\left(\frac{2n^2 p}{m^2 q}-1\right)^2\right]$$

[1] गणितसार संग्रह, 7/108½, पृ॰ 213

[2] गणितसार संग्रह, 7/137, पृ॰ 216

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$\text{आधार} = m \times 2 \times 2 \frac{6n^2\, p}{m^2\, q}\left(\frac{2n^2\, p}{m^2\, q} - 1\right)$$

$$\text{ऊंचाई} = m\left[\left(\frac{6n^2\, p}{m^2\, q}\right)^2 - \left(\frac{2n^2\, p}{m^2\, q} - 1\right)^2\right]$$

द्वितीय कुलक से द्वितीय त्रिभुज हेतु—

$$\text{समान भुजायें} = n\left(\left[\frac{4n^2\, p}{m^2\, q} + 1\right)^2 + \left(\frac{4n^2\, p}{m^2\, q} - 2\right)^2\right]$$

$$\text{आधार} = n \times 2 \times 2\left(\frac{4n^2\, p}{m^2\, q} + 1\right)\left(\frac{4n^2\, p}{m^2\, q} - 2\right)$$

$$\text{ऊंचाई} = n\left[\left(\frac{4n^2\, p}{m^2\, q} + 1\right)^2 + \left(\frac{4n^2\, p}{m^2\, q} - 2\right)^2\right]$$

उपरोक्त मापों से स्पष्ट है कि परिमितियों का अनुपात $m : n$ एवं क्षेत्रफलों का $p : q$ होगा।

जन्य विषमबाहु त्रिभुज—महावीराचार्य ने मात्र समद्विवाहु त्रिभुज ही नहीं अपितु विषमवाहु त्रिभुजों के जनन की विधियाँ भी दी हैं। यथा—

"दिये गये वीजों से प्राप्त आयत के आधार की आधी राशि को मन से चुनी हुई संख्या द्वारा भाजित करते हैं। प्राप्त भाजक और भजनफल को पुनः वीज मानकर एक दूसरा आयत प्राप्त करते हैं। इन दोनों आयतों की लम्ब भुजाओं का योग अभीष्ट त्रिभुज का आधार एवं इन दोनों आयतों के कर्ण अभीष्ट त्रिभुज की भुजायें होती हैं। इन दो आयतों में से एक का आधार अभीष्ट त्रिभुज का लम्ब होता है।

यदि m एवं n दो वीज राशियाँ हों तो इनसे निर्मित आयत की मापें क्रमशः लम्ब, आधार एवं विकर्ण—

$m^2 - n$, $2m\,n$ तथा $m^2 + n^2$ होगी।

यदि m, n के p एवं q दो परिमेय गुणन खंड हो अर्थात $p\,q = m\,n$ तो $p\,q$ से बने अन्य आयत की मापें—

$p^2 - q^2$, $2p\,q$ तथा $p^2 + q^2$ होगी।

अतः अभीष्ट विषमबाहु की मापें—

आधार $= (m^2 - n^2) + (p^2 - q^2)$

दो भुजायें $= p^2 + q^2$, $m^2 - n^2$

अभीष्ट त्रिभुज B D E होगा।

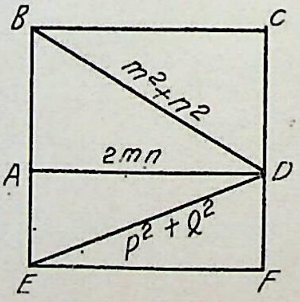

महावीराचार्य ने ज्ञात क्षेत्रफल के त्रिभुजों के निर्धारण हेतु भी अनेक नियम दिये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्र त्रिभुजों ही नहीं अपितु अनेक प्रकार के चतुर्भुजों, चक्रीय चतुर्भुज सम-लम्ब चतुर्भुज आदि तथा परिगत तथा अन्तर्गत वृत्तों की भी विवेचना अत्यंत व्यापक एवं पूर्ववर्ती गणितज्ञों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत रूप में की है इनके जनन की अनेक विधियाँ रोचक उदाहरणों सहित उपलब्ध हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महावीराचार्य द्वारा प्रस्तुत जन्य त्रिभुजों एवं चतुर्भुजों का विवेचन पूर्ववर्ती गणितज्ञों द्वारा प्रदत्त विवेचनों पर अनेक परिष्कारों, कतिपय नवीन अभिधारणाओं, मौलिकताओं से सम्पन्न है। इनके विवेचन रोचक, सरल, सरस एवं बोधगम्य हैं। अनेक स्थलों पर उनके द्वारा प्रदत्त विवेचन सदियों बाद योरोप में पुनः अविष्कृत हुए किन्तु पुनः अविष्कृत करने वालों को श्रेय मिला एवं मूल आविष्कारक वंचित रह गये। इस क्षेत्र में उनके योगदान के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसंहार

सम्पूर्ण विवेचना स्वयं इस तथ्य को प्रकट करता है कि महावीराचार्य का भारतीय गणित में अद्वितीय स्थान है। काल्पनिक संख्याओं, लघुत्तम समापवर्त्य ज्ञात करने, संचय के व्यापक सूत्र, बीज गणितीय समीकरणों के एवं जन्य व्यवहार में बीज गणित के अनुप्रयोग, विविध अपरिचित ज्यामितीय आकृतियों के क्षेत्रफल ज्ञात करने के सूत्र तथा क्षेत्र गणित के क्षेत्र में उनका विशिष्ट योगदान है। गणित-सार-संग्रह के अतिरिक्त आपकी अन्य कोई भी कृति प्रकाश में नहीं आ सकी है उनके प्रकाश में आने पर गणित इतिहास में नवीन तथ्यों का समावेश हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संदर्भ ग्रन्थ एवं लेख

1. अग्रवाल, मुकुट बिहारीलाल

   I. "महावीराचार्य की जैन गणित को जैन देन" सिद्धांत भास्कर (आरा), 24-1, पृ० 42-47, 1964

   II. गणित एवं ज्योतिष के विकास में जैनाचार्यों का योगदान, आगरा वि० वि० में प्रस्तुत शोध प्रबंध, पृ० 377, 1972

2. व्रजमोहन — "गणित का इतिहास," उ० प्र० हिन्दी ग्रंथ अकादमी", लखनऊ, 1965

3. द्विवेदी, सुधाकर — गणक तरंगिणी वाराणसी, 1899

4. जैन, अनुपम

   I. "महावीराचार्य व्यक्तित्व एवं कृतित्व", जैन-शोधांक 47 (मथुरा) पृ० 258-260, 1981

   II. "षट्त्रिंशिका या षट्त्रिंशतिका", जैन सिद्धांत भास्कर (आरा), 34-2, पृ० 39-40, 1982

5. जैन, ज्योतिप्रसाद — "राष्ट्रकूट युग का जैन साहित्य सम्वर्द्धन में योगदान", सिद्धांताचार्य पं० कैलाशचन्द्र अभि० ग्रंथ (रींवा), पृ० 273-280, 1980

6. जैन, लक्ष्मीचन्द्र — "भारतीय गणित शास्त्र एवं जैन लोकोत्तर गणित "अनुसंधान पत्रिका, जैन विश्व भारती, लांडनू, अप्रैल-जून, पृ० 33-41, 1973

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

7. जैन, परमानंद — जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, भाग–2, पी० एस० जैन, मोटर कम्पनी, दिल्ली, 1974

8. कासलीवाल, कस्तूरचंद — राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची–5 श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र, श्री महावीर जी, (राज०)

9. सरस्वती, सत्यप्रकाश — "आचार्य महावीर की रेखा गणितीय उपलब्धियाँ", सिद्धांताचार्य पं० कैलाशचन्द्र अभि. ग्रंथ (रीवां), पृ० 417–425, 1980

10. शास्त्री, नेमिचन्द्र जैन — I. "भारतीय ज्योतिष का पोषक जैन ज्योतिष साहित्य," वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ सागर, सागर, पृ० 470–484, 1950

II. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 4 अ० भा० दि० जैन विद्वत परिषद, सागर, 1974

11. शास्त्री, के० भुजबली — I. कन्नड़ प्रांतीय ताड़पत्रीय ग्रंथ सूची, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1947

12. शाह, अंबालाल — जैन साहित्य का बृहद इतिहास, भाग–5, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान (वाराणसी) पृ० 160–166, 1965

13. शुक्ला, कृपाशंकर — हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, भाग–1 (मूल दत्त एवं सिंह के ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद) उ० प्र० हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1967

14. उपाध्याय, व० ल० — प्राचीन भारतीय गणित (प्रथम संस्करण), विज्ञान भारती, दिल्ली, 1971

15. " — "तिलोयपण्णत्ति, हिन्दी अनुवाद, भाग–1, 2

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सं०डॉ० हीरालाल जैन, शोलापुर, 1943, 1952

16. — गणितसार संग्रह, हिन्दी अनुवाद, प्रस्तावना, पादटिप्पणियों एवं परिशिष्टों सहित सम्पादित, अनु० लक्ष्मीचन्द्र जैन, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, 1963

17. — "पट्त्रिंशिका" पांडुलिपि, दि० जैन मंदिर, ठोलियाँन, जयपुर,

18. — क्षेत्र गणित दि०जैन मंदिर, ठोलियाँन, जयपुर

19. Bag. A. K. Mathematics in Ancient & medieval India, Chaurkhamba Orientalaya, Varanasi, 1977

20. Bagi, B. B. 'Introductory' at tached with G. S. S. Hindi Edition, Sholapur 1963.

21. Bell, E. T' Development of Mathematics, Macgraw hill, New York. 1940

22. Cajori, F. History of Mathematics, Macmilan & Co. New York, 1958

23. Dutt B. B. "On Mahavira's Solution of Rational Triangees & Quadrilaterals' B. C. M. S. (Calcutta), 20, PP. 267-294, 1928

24. Dutt B. B. & Singh A. N. History of Hindu Mathematics 2 Vols. (Ist Ed.–Motilal Banarsidas, Lahore, 1935, 1937

25. Ever, Horward AnI ntroduction to History of Mathematics, Rienholt & Winston, New York. 1964

26. Gupta, R. C. I 'Mahaviracarya on the perimetors

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

& Area of on Eleipse, M. E. (Shivan) 8-Ipp 17–19 1974

"Mahaviracarya Rule for the surface Area of on Segment'–A New Interpretation" Tulsi Prajnan (तुलसी प्रजा) (Laduun), 1-2, PP 63–64 1975

27. Jain, Anupam — I 'Mahaviracarya, the Man & the Mathematician' Actaciencia Indica (Meerut), 10, 1984

II "Survey of the Work-done on Jaina Mathematics" Tulsi Prajna (Landnun) 11 (1–3) PP. 15-27, 1983

28. Jain, B. S. — "On Ganitasara Samgrah of Mahavlra" I. J. H. S. (Calcutta) 12-I, 17-32, 1177

29. Kline, Morris — Develoment of Mathematical Thoughts from Ancient to Modern times' Oxford University, Oxford 1972

30. Lal, R. S, & Sinha, S. R. — "Contribution of Mahaviracarya in the Development of theory of Series." M. E. (Shivan) 15-B PP. 83-92, 1987

31. Saraswani, T. A. — Geometry in Ancient & Medieval India, Motilal Banarsidas, New Delhi. 1979

32. Smith, D. E. — History of Mathematics, 2 Vols. Dowar Publication, New York, 1958

33. Sen, S. N, Bag, A. K. & etal — 'Bibliography of Samskrita works on Astronomy & Mathematics, I. N. S. A, New Delhi, 1966

34. Srinivasiengar, C. N. — The History of Ancient Indian Mathematics, world Press, Calcutta. 1967

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi